मृत्यु और मृत्यु के बाद

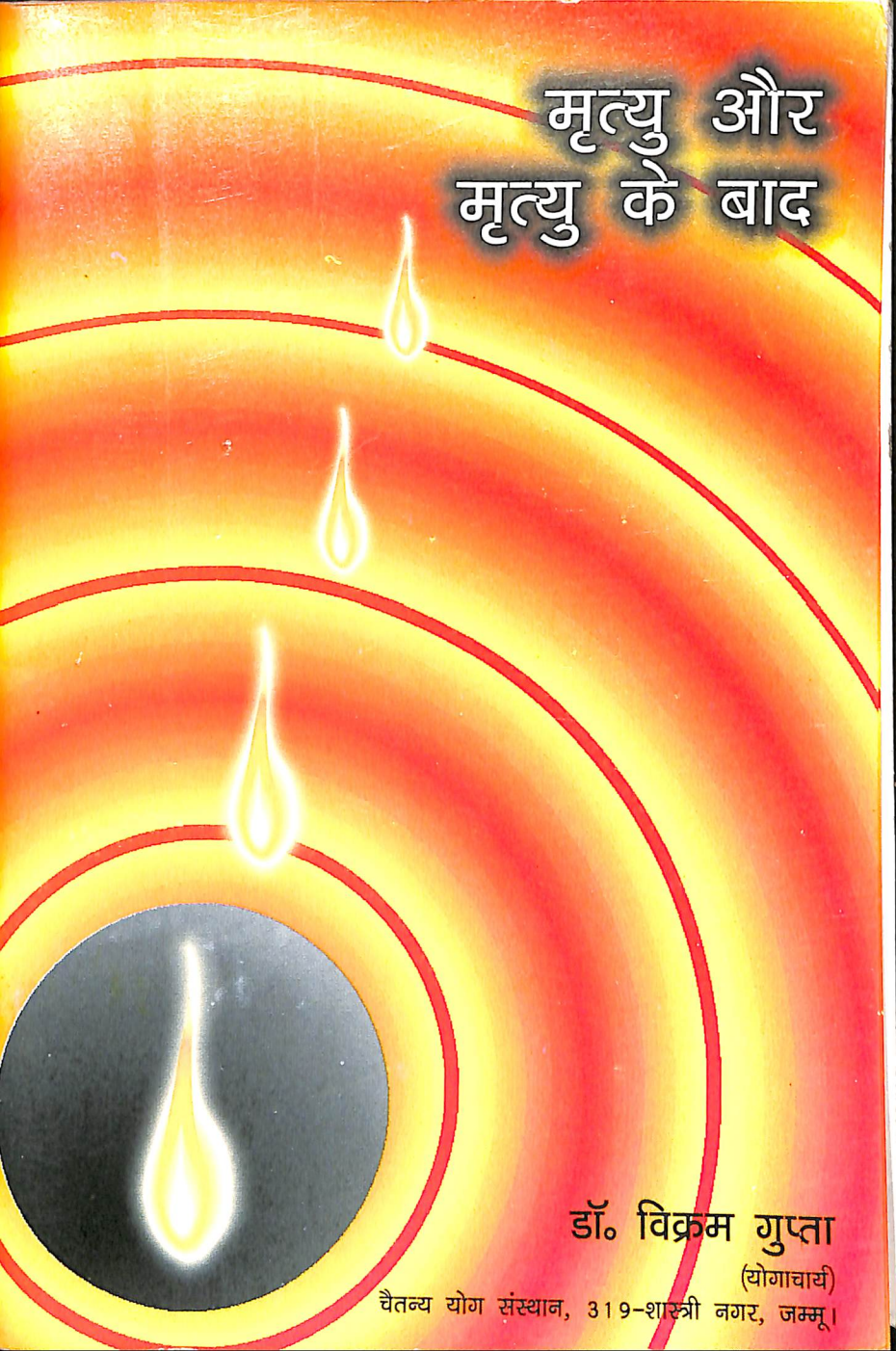

डॉ॰ विक्रम गुप्ता
(योगाचार्य)
चैतन्य योग संस्थान, 319-शास्त्री नगर, जम्मू।

मृत्यु और मृत्यु के बाद

मृत्यु
और मृत्यु
के बाद

मूल्य :—35/-

लेखक :
डा० विक्रम गुप्ता
YOGAACHARYA

सहसम्पादक :
मिस मोनिका गुप्ता
M.SC. (CHEMISTRY)
D.S.T. QUALIFIED

चैतन्य योग संस्थान ३१९, शास्त्री नगर, जम्मू

ऊँ श्री गुरूदेवाय नमः

गुरू ही कर्त्ता, गुरू ही विधाता
गुरू के संतुष्ट होने पर सभी देवता
संतुष्ट हो जाते हैं।

-----0----

जो कुछ भी लिख रहा हुँ यह सब
परमवन्धनिय गुरूदेव जी की कृपा से है।

-----0----

विन गुरू कृपा के ज्ञान अमृत की
वर्षा नहीं हो सकती

-डॉ विक्रम गुप्ता
योगाचार्य

भूमिका

यह जगत जो हमें दिखाई दे रहा है यह *"स्थूल"* है और इसके कई हिस्से जो ज़्यादातर दिखाई नहीं देते वह सूक्ष्म है। इसी *"सूक्ष्म"* से *"स्थूल"* जगत का निर्माण हुआ है।

जिस प्रकार समुद्र में बर्फ से लद्धे हुए पहाड़ तैरते हैं तो उन का (दसवां हिस्सा) यानि काफी हिस्सा पानी के नीचे में रहता है। इसी प्रकार इस (स्थूल) जगत का बहुत बड़ा हिस्सा *"सूक्ष्म"* में है। यह *"स्थूल"* आंखों से दिखाई नहीं दे सकता। यह "दुनियावी" आंखों से नहीं बल्कि *"बुनियादी"* आंखों यानि *"दिव्य दृष्टि"* से दिखाई देता है। इसलिए इसके लिए दिव्य दृष्टि की जरूरत है। यह दृष्टि कुछ महापुरुषों को ही प्राप्त होती है।

उनके द्वारा "वर्णन" बातों को प्रमाणिक किया जाता है। इस पूरे *"जड चेतनात्मक"* जगत का ज्ञान ही अध्यात्म का विषय है। विज्ञान केवल *"स्थूल"* जगत के रहस्यों को बताता है परंतु *"अध्यात्म चेतन"* ज्ञान देता है। दोनों के अलग–अलग (क्षेत्र) है। *"अध्यात्म"* का *"सम्बन्ध"* चेतना से है तथा विज्ञान का पदार्थ से (Materialistic) जगत से।

इन दोनों की आपस में कोई बराबरी नहीं हैं। *"अध्यात्मवाद"* से (सत्य) प्रकट होता है – (सत्य से सत्यता) *"वैज्ञानिक" परिक्षण* द्वारा सत्य की खोज करता है। अध्यात्मवादी ने देख लिया समझ लिया *"वैज्ञानिक"* जानने की कोशिश कर रहा है।

"अध्यात्मवाद" में *"अन्धविश्वास"* की (सम्भावनाएं) अधिक हैं परंतु विज्ञान की एक सीमा है जिसके आगे वह नहीं जा सकता परंतु जीवन को आगे ले जाने और *"श्रेष्ठता"* लाने के लिए दोनों की बराबरी की आवश्यकता है (जरूरत है) *"मृत्यु"* जीवन का *"शाश्वत"*

सत्य है। उस सत्यता से हम इन्कार नहीं कर सकते। उसे सुखद बनाया जा सकता है जिससे यह जीवन उन्नत एवं समृद बन सके। *"देवी शक्तियां"* इसे उन्नत बनाने के लिए सदा सहयोग करती रहती हैं। परंतु मनुष्य अज्ञानवश या मद से चूर स्वयं अपना *"पतन" "विनाश"* अन्त कर लेता है। जिस के लिए *"ईश्वर"* नहीं हम खुद जिम्मेदार हैं। *"मृत्यु"* क्या है – *"मृत्यु"* के बाद भी जीवन है। *"मृत्यु"* के बाद *"आत्माएं"* किन–किन लोकों में *"भ्रमण"* करती है। क्या *"पुर्नजन्म"* भी होता है। मृत्यु किस की होती है *"मोक्ष"* परलोक यात्रा इत्यादि इस पुस्तक में दर्शाने का यत्न किया है।

यह प्रेरणा मुझे अपने जीवन में एक घटित घटना के आधार से हुई। हमारी डोगरी भाषा में कहते है *"प्रयाग जाना"* जब मनुष्य अपनी खो बैठता सुद्धि यानि होश हवास है – और कुछ लोग ऐसे भी कहते हैं कि अभी मौत का समय नहीं था जीवन शेष था परंतु ईश्वर के फरिश्ते गलती से ले गए। फिर वापस भेज दिया।

शरीर में सभी मशीनरी Dead हो जाती है और आगे की सब बातें सुनाई देती हैं। मनुष्य की ईश्वर से ही बाते होती है वह पीछे को भूल जाता है। यह घटना मेरे साथ 1966–67 में घटी। २८ वर्ष की आयु तक मेरी पीठ पर पंजे का निशान बना रहा और छाती पर त्रिशूल छोटा सा जो आहिस्ता–आहिस्ता समय की गति के साथ मिट गया। जो इन दो दिनों में मैने आगे का लेखा–जोखा देखा वह मुझे भूल नहीं सकता और आज तक याद है। उसके बाद मैने जो धार्मिक अध्ययन किया उसी के आधार पर आज लेखनी के द्वारा इस पुस्तक में लिखने जा रहा हूं लेखनी द्वारा प्रयास किया कि मानवता को जागृत कर सकूं। दिन प्रतिदिन हमारा समाज सच्चाई संस्कृति से गिरता जा रहा है। प्रभु कृपा से कुछ जागृत करने में योगदान डाल सकूं। यह सब परमपिता की कृपा से है।

–डा. विक्रम गुप्ता
योगाचार्य

सृष्टि रचना
पर ब्रह्म का स्वरूप

सृष्टि रचना के समय सिर्फ एक ही तत्व विधामान था जो अनन्त, अनादि, नित्य, असीम सर्वव्याप्त था। यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म एवं परमाणु का भी परमाणु था उसे सत् चित् तथा आनन्द स्वरूप भी नहीं कहा जा सकता। यही सृष्टि का सार तत्व है जिसका कोई कारण नहीं है परंतु समस्त जड़ चेतनात्मक जगत् का यही परम कारण है। वहां ज्ञान और क्रिया की कोई अभिव्यक्ति नहीं थी। यह एक सत्यता थी। इसका कोई नाम रूप न था – इसे न व्यक्त किया जा सकता है न अव्यक्त, न दृश्य न अदृश्य, न शान्त न स्पन्दन युक्त, न जड़, न चेतन उसे कुछ नहीं कह सकते फिर भी वही सब कुछ है। यह सभी अभिव्यक्तियों से पूर्ण है। यह स्थिति सारी व्यक्त सृष्टि के पहले की है।

यह वही सत्ता है जिस से सभी सत्ताए प्रकट होती हैं किसी भी चीज वस्तु या सत्ता को उभरने – सामने आने एवं प्रकट होने के बाद ही नाम दिया जा सकता है। अभिव्यक्ति से पूर्व का रूप समझ – ज्ञान तथा अनुभूति से पीछे है (परे)। ज्ञानी भी इस की पूर्ण जानकारी नहीं दे सकते – किसी की पहुंच नहीं। और देना भी उचित नहीं क्योंकि इससे भ्रांतियां अधिक पैदा होती है। थोड़ी व्याख्या करे भी तो वही कर सकता है जिस को इस की अनुभूति हुई है। *वहां किसी ज्ञान की पहुंच नहीं – शब्दों से परे है। ज्ञान की ऊंची अवस्था एवं ज्ञान के अंतिम छोर यानि (अंतिम अवस्था में)* इसका अनुभव किया जा सकता है। *यही अनुभव जगत को दिया जा सकता है।* इस असीम में प्रवेश का कोई उपाय नहीं। प्रवेश कर के फिर लौटने का कोई उपाय नहीं।

ब्रह्मा–विष्णु, महेश, देव –गन्धर्व सभी प्रवेश के बाहर ही खड़े होकर इस जगत की रचना, संचालन तथा व्यवस्था कर रहे हैं। इस

परम चेतन तत्व की अनुभूति होती है। कल्पान्त में सभी इसमें प्रविष्ठ होते हैं फिर सृष्टि रचना की प्रक्रिया शुरू होती है। *ज्ञानियों ने इसे (परब्रह्म) कहा है वहीं परब्रह्म सबको धारण करने वाला है।* समस्त (सारा) जड़ एवं चेतन प्रकृतियों से भिन्न भी है।

इसलिए *वह इन सबसे श्रेष्ठ एवं विलक्षण है।* यह सृष्टि की कारण अवस्था है जिसे (निराकार) स्वरूप कहते है। जिस समय यह कार्य रूप में स्थित होता है तो इसकी शक्तियां भिन्न भिन्न रूपों में प्रकट होती ह। यही इसका *साकार* रूप है इसकी कार्य *अवस्था* है। इसकी कार्य की जो अवस्था है वही *साकार* रूप है। *इस प्रकार "निर्गुण ब्रह्म" (परब्रह्म) कारण "ब्रह्म है" तथा सगुण ब्रह्म (ऊपर ब्रह्म) कार्य ब्रह्म है।*

यह ब्रह्म के दो स्वरूप नहीं है लेकिन वहीं एक इन दोनों लक्षणों से युक्त हैं। जिस तरह बिजली अप्रकट रूप है एवं अग्नि उसका प्रकट रूप हैं। बिल्कुल इसी तरह *"ब्रह्म"* का *"निराकार"* एवं *"साकार"* रूप है। दोनों अलग नहीं है यह सृष्टि उसी एक की अभिव्यक्ति है। प्रत्येक कल्प में सृष्टि की नई रचना होती है फिर कल्पान्त में यह उस *"ब्रह्म"* में विलीन हो जाती है।

ठीक उसी तरह जैसे बीज में सारे वृक्ष की सत्ता विद्यमान रहती है उसी प्रकार यह जगत अप्रकट रूप से *"शक्ति"* रूप से *"प्रब्रह्म"* में विद्यमान रहता है फिर "सृष्टिकाल" में शक्ति जड़ चेतन के रूप में प्रकट होती है। सत्ता का कभी नाश नहीं होता।

परा और अपरा प्रकृतियां

इस परब्रह्म में दो प्रकार की प्रकृतियां (शक्तियां) है *"परा"* एवं *"अपरा"* नाम से जानी जाती है। परब्रह्म की इन दोनों प्रकृतियों से ही सृष्टि की रचना होती है। यह प्रकृतियां प्रकट एवं अप्रकट रूप से विद्यमान (विराजमान) रहती है। *ब्रह्म इन दोनों से विलक्षण है।* जगत् इनके विस्तार से ही दृश्य है।

इनकी सत्ता स्वतंत्र नहीं है। *परब्रह्म ही नित्य एवं शाश्वत है।* यह प्रकृतियां अनित्य एवं विनाशी है। परंतु ज्ञान के अभाव में यह नित्य जैसी लगती है। *माया इसी भ्रम को कहा जाता है।*

प्रकृति को नित्य – सदा रहने वाली अविनाशी मानना ही माया है। यही जीव के बंधन का कारण बन जाती है। सूर्य देव प्रकट रूप से हमारे सामने ह हम न माने तो क्या सूर्य का अस्तित्व गिर जायेगा ऐसा नहीं। सत् का ज्ञान होने पर यह प्रकृतियां *"ब्रह्म"* में लीन हो जाती हैं।

इसी को जीवन की *'मुक्तावस्था"* कहते हैं तब जड़–चेतनात्मक जगत का एकमात्र निमित एवं उपादान कारण वह *"परब्रह्म"* ही है। इसी से सृष्टि की रचना – संचालन एवं प्रलय होती है यही मूल तत्व है।

ईश्वर प्रकट स्वरूप

परम सत्ता (परब्रह्म) से ही व्यक्तिगत ईश्वर का उदभव होता है। ईश्वर एक से दो और दो से तीन को प्राप्त होता है। हम उसे ही *"त्रिमूर्ति"* कहते हैं। उसे ही "त्रिमूर्ति" के नाम से जाना जाता है। वह ईश्वर ही "शब्द" ब्रह्म है उन तीन रूपों के नाम *"ब्रह्मा–विष्णु–महेश"* तीन रूप हैं और ऐसे ही आत्मा की भी उपाधियां है–

स्थूल – सूक्ष्म एवं कारण शरीर ह – इस की चौथी अवस्था (स्थिति) शान्त – अद्वैत – 'शिव' जी महाराज जी की है।

इसी *'त्रिमूर्ति'* से देवताओं की उत्पति होती है।

ईश्वर उस *"अव्यक्त ब्रह्म"* का व्यक्त रूप है।

मनुष्य (प्राणी) इसका प्रतिबिम्ब (छाया है)

इसकी अन्तरात्मा ईश्वर रूप है।

असंख्या (अनगिनत) सृष्टियां एवं हर एक में अनगिनत सूर्यमण्डल उसी परब्रह्म में है।

हर एक सूर्यमण्डल का आधिपति उसका ईश्वर है।

हर एक ईश्वर अपनी सृष्टि की रचना करता है।

हर *कल्प* के शुरू में जब *योग निद्रा* से जागते हैं फिर सृष्टि का पूर्ण चित्र उनके मन में आ जाता है। उनका संकल्प होता है। मन में आता है (एकोऽहं बहुस्याम) मैं एक हूं अनेक हो जांऊ के संकल्प से *"ब्रह्मा"* उत्पन्न होते हैं। ईश्वर इच्छा से ही दूसरे देव भी ऋषि भी संसार में आते हैं। उसी चित्र के अनुसार फिर संसार का विकास करते हैं।

ब्रह्मा जी ने सृष्टि रचना के लिए तप किया। इस तपस्या के बाद दो प्रकार की शक्तियों का पता चला। *ज्ञान एवं विज्ञान* अथवा क्रिया शक्ति। इन्हीं का नाम *"गायत्री और सवित्री"* रखा गया। *चेतना शक्ति का नाम "गायत्री"* और *प्रकृति का नाम सवित्री रखा। सांख्या योग ने इन्हीं को "पुरुष और "प्रकृति"* कहा है।

"परा एवं अपरा" प्रकृतियां है जिन्हें *"चेतन"* और *"जड़"* कहा जाता है। *"जड़"* से प्रकृति पदार्थों का निर्माण होता है और "चेतन" शक्ति" से उनमें प्राणों का संचार होता है जिससे वह जीता है और क्रियाशील हो जाता है। सारी सृष्टि का निर्माण इन दोनों के संयोग से ही है अन्य जीवों में साधारण चेतना होती है लेकिन मनुष्य में पांचों प्राणों में आत्म चेतना भी होती है। बाकी प्राणी स्वभाव से अपना जीवन का यापन करते हैं। परंतु मनुष्य में अच्छे बुरे – उचित – अनुचित करने के लिए विशेष ज्ञान भी होता है। इसलिए वह पशुओं से थोड़ा ऊंचा स्थान रखता है। इसी विशेष ज्ञान के कारण वह प्रभु की भी खोज कर सकता है एवं प्राप्त भी कर सकता है।

सृष्टि रचना

सृष्टि की मूल शक्ति (सत्ता) केन्द्र में है। प्रकृति उस पर आवरण है। *यही असत है – माया है – झूठ ह* प्रकृति का विकास (विस्तार) ईश्वर से ही होता है। *उसके विस्तार की पहली अवस्था प्रकृति है। फिर यहीं से रूपों की उत्पति होती है। रूपों की उत्पति दूसरी*

अवस्था है। तीसरी अवस्था में "मैं" पन का विकास होता है। जब रूपों का विस्तार (विकास) होता है तो वह *ईश्वर जगत* का व्यवस्थापक बन जाता है। ईश्वर की सत्ता हर एक के केन्द्र में समाई रहती है जो नियमित रूप से इन रूपों का संचालन करती है। अध्यात्मिकता (अध्यात्म) के अनुसार पदार्थ भी सजीव ही हैं। इन की चेतना *"तुरीयावस्था"* में है।

जब *"रूपों"* की स्थिरता होती है तब *"वनस्पति"* वर्ग का विकास होता है। इसके बाद *"पशु"* वर्ग एवं *"मनुष्य"* वर्ग का विकास होता है। जिस काल में जिस समय सृष्टि की रचना हुई या होती है सबसे पहले *"अपरा" "प्रकृति"* से *"आकाश"* उत्पन्न होता है फिर आकाश से "वायु" – "वायु" से तेज – *"तेज से जल"* तथा *"जल"* से *"पृथ्वी"* उत्पन्न होती है। फिर *"पृथ्वी"* से *"खनिज"* "खनिज" से वनस्पति और वनस्पति से जीवन उपजते हैं। आगे चल कर उसकी "परा" प्रकृति है।

"परा प्रकृति", (चैतन्य) से "बुद्धि" – "अंहकार" "मन" "चित्त" "इन्द्रियां" उत्पन्न होती हैं। यही रूप सकल हैं, स्वरूप है इस जड़ "चेतनात्मक" जगत का दोनों प्रकृतियों के मिलने, संयोग से – मनुष्य के *"स्थूल" "सूक्ष्म"* तथा *"कारण"* शरीर का निर्माण होता है।

इसी प्रकार सृष्टि के समस्त *'दृश्य'* एवं *'अदृश्य'* पदार्थों का निर्माण उसी *"परब्रह्म"* की *'अभिव्यक्ति'* है। उस *"चैतन्य"* पर जैसे जैसे प्रकृति के "आवरण" पर्दे चढ़ते जाते हैं वैसे ही धनत्व बढ़ता है। इसके आधार पर *"सात लोकों"* का निर्माण होता है।

सबसे धनत्व वाला *"भू"* लोक है।

सबसे सूक्ष्म "ब्रह्मलोक" है यह जीवात्मा का निवास स्थान है।

इसी *"धनता"* के आधार पर मनुष्य के शरीर के भी *"सात आवरण हैं"* इसमें सबसे अधिक धनत्व वाला मनुष्य "स्थूल शरीर" है। इसके भीतर अन्य शरीर हैं अन्त में *"आत्मा का स्थान"* है जो सब से सूक्ष्म है यही *"आत्मा" "ईश्वर"* का अंश है।

सृष्टि की व्यवस्था

ईश्वर की इच्छा अनुसार ही (देवगण) देवता लोग इस सृष्टि की व्यवस्था करते हैं। प्रत्येक विभाग के देवता का अधिपती देवता रहता है। जैसे इस संसार में भी Minister यानि मंत्री के आगे मुख्यमंत्री Chief Minister होता है। जैसे *"आकाश"* (ईश्वर) तत्व के देवगणों का आधिपती *"इन्द्र"* हैं *"अग्नि" तत्व)* के देवगण का अधिपती *"वरूण"* है *"पृथ्वी"* के (कुवैर) हैं। देवता अपने अपने "तत्व" के देवगणों की निगरानी रखते है। ईश्वर इच्छा अनुसार उन से काम करवाते हैं। इस की प्रकृति व नियम को समझ कर ही विज्ञान का विकास किया जा सकता है। योगी इन नियमों को जान कर कई प्रकार की सिद्धियां प्राप्त कर लेते हैं।

"परा" शक्ति के कई घटक है उनमें सबसे ऊंची स्तर पर देवगण हैं।

यह "ब्रह्म" चेतना के अति निकट हैं और सृष्टि संचालन इन्ही के हाथ है। इनका सबसे बड़ा कार्य सृष्टि का संतुलन बनाए रखना है। ईश्वर इच्छा से यह देव ही अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं।

"देव" समुदाय का दूसरा वर्ग – *"यक्ष" "गन्धर्व" और "सिद्ध"* पुरूष हैं। "यक्ष" और "गन्धर्व" "सुरक्षित" सेना की तरह होते हैं। इन के महत्वपूर्ण कार्यों में इस्तेमाल किया जाता है। इन्हे "दिग्पाल" एवं "दिग्गज" भी कहते हैं। "काम" "कौतुक" में इनका *"हस्तक्षेप"* है।

"देवता" – "यक्ष" – "गन्धर्व" उच्च लोक के निवासी है पात्रता के मुताबिक मनुष्य पर कृपा करते रहते हैं। *"आराधना" "अनुष्ठान"* से भी यह प्रसन्न होकर अनुग्रह करते देखे गए हैं।

"तीसरा वर्ग" – सिद्ध पुरुषों और "पितरों" का है। वह "भू" लोक में रहते हैं। यह 'भू" लोक वासी प्राणियों से अधिक घनिष्ठ संबंध रखते हैं। इनके शरीर सूक्ष्म होते हुए भी जरूरत के अनुसार *"स्थूल"* शरीर धारण करते हैं। बड़े पैमाने पर उच्च स्तर पर इनके

"सूक्ष्म" शरीर द्वारा कार्य किए जाते हैं जो स्थूल शरीर द्वारा संभव नहीं है। इनकी क्षमता देव लोक के साथ जुड़ी रहती है। इनकी अवधि असीम होती है। यह असाधारण सफलताएं एवं सफलताएं दान करने के अत्सुक रहते है। ये ही "सिद्ध पुरुष" कहलाते है। ये ही सिद्ध पुरुष भौतिक शरीर में (ऋषि) कहलाते हैं। सूक्ष्म शरीर में यह "दिव्य" पुरुष कहलाते है। देवता और मनुष्य की मध्य स्थिति में होते हैं।

इनसे संपर्क किया जा सकता है। भौतिक लाभ के लिए ये पितर ही सहायता करते हैं। *इसके लिए सिद्ध पुरुषों से सम्पर्क करना उचित* नहीं है। ये सिर्फ आत्मिक उन्नति में ही सहायक होते है ये उपयुक्त पात्र की तलाश में रहते है जिसके द्वारा अपना ज्ञान सृष्टि को देते हैं।

ब्रह्म, आत्मा और शरीर

ब्रह्म और आत्मा

अध्यात्मक विज्ञान के मुताबिक इस सारे जड़ चेतनामय सृष्टि की मूल इकाई *'चेतन ऊर्जा'* है। भौतिक पदार्थों की मूल इकाई "परमाणु" इसका रूप हैं। *"भौतिक ऊर्जा"* के भीतर भी 'चेतन ऊर्जा' ही है।

इसी से उस का निर्माण हुआ है। वैज्ञानिकों ने भी इस का अनुभव किया है। यह (चेतन) "समष्टि" के कण–कण में व्याप्त है। इस समष्टि को ही *"ब्रह्म"* का नाम दिया है। यही "समष्टि" (चेतना) हर व्यक्ति में व्याप्त है।

इसे ही "व्यष्टि" "चेतना" या ब्रह्म का नाम दिया गया है। शरीर में व्याप्त एक ही चेतना है चाहे *"समष्टि"* चेतना हो या चेतना हो। यह एक ही हैं। अलग नहीं है *"व्यष्टि" "चेतन" (आत्मा)* जब अपने असल (शुद्ध स्वरूप) को प्राप्त कर लेता है तब वह *"समष्टि" 'चेतन'* में विलीन हो जाता है। इसका स्वतंत्र *"अस्तित्व"* वजूद शरीर के कारण ज्ञात होता है। इसका मूल कारण *"अंहकार"* (proud) होता

है। सच्च तो यह है कि इस का स्वतंत्र *"अस्तित्व"* है ही नहीं परंतु जब अंहकार "रूपी आवरण" "माया रूपी पर्दा" आ जाता है तब इस का नाम जीवात्मा हो जाता है।

अंहकार के कारण "बुद्धि" "मन" "चित्त" आदि का जब संयोग हो जाता है तब जीवात्मा हो जाता है। *"संयोग" तो अनादि काल से है।* जीवात्मा को भी अनादि कहा जाता है। 'विजातीय' तत्वों का वियोग होने से – *बाहरी तत्वों* के साफ होने से *'आत्मा'* शुद्ध स्वरूप को द्वारा प्राप्त कर लेती है। फिर *"समष्टि"* चेतन में स्थित हो जाती है। " यहीं से *'जीवात्मा"* की *"मुक्तावस्था"* है " मुक्तावस्था तथा 'जीवात्मा' का परमात्मा से "पार्थक्या" संबंध बना रहता है। ब्रह्म–चेतन–समष्टि *"चेतना"* है। यही जीव में आत्मचेतना के रूप में कार्य करती है।

"आत्म चेतना" का मुख्य आधार प्राण चेतना है। जिसका अपना स्वतंत्र विज्ञान है। आत्म चेतना के ज्ञान से इसे जाना जा सकता है। *"विराट ब्रह्म"* का लघुतम घटक परमाणु है। इसके बीच में अनन्त ऊर्जा समाहित है। उसी प्रकार शरीर का *"लघुतम घटक"* आत्मा है जो शक्ति का केन्द्र है। यह जीवात्मा उस विराट का अंश मात्र होते हुए भी उसमें बीज रूप में सब कुछ विद्यामान है जो उस विराट में है।

छोटे से बीज के अन्दर बहुत बड़े वृक्ष की सारी सत्ता भरी पड़ी होती है – ठीक वैसे ही वीर्य कण में मनुष्य की समूची सत्ता विद्यामान है। मनुष्य के पूरे विकास की सम्भावनाएं उस वीर्य में पहले ही विद्यामान है।

अगर यह विद्यामान न हो तो विकास संभव ना था। इसी प्रकार *"आत्मा"* में *"परमात्मा"* का पूरा वैभव विद्यामान है। उसको जागृत करने की विधि "योग" और "तप" है। वहां पर ऊर्जा सुप्त पड़ी है। उसे जागृत के *"ऋद्धि" "सिद्धि"* प्राप्त की जा सकती है। और *"स्वर्ग"* और *"मुक्ति"* की भी (सम्भावनाएं) है। *"ब्रह्म और जीवात्मा"*

की "भिन्नता" और अलगपन्न अंहकार रूपी आवरण के कारण महसूस होता है। आवरण के हटते ही यह *"प्रतीति"* हो जाती है कि *"आत्मा"* ही *"ब्रह्म"* है। यह मिथ्या धारणा है कि यह "परमात्मा" से भिन्न है। अलगपन्न का दूसरा कारण मन है जो भिन्न भिन्न संस्कारों वाला है।

"जीवात्मा" और पिता में ऐसा संबंध है जैसे पुत्र और पिता का संबंध है। "अध्यात्म" इसी कारण "आत्मा" को ही "महत्व" देता है जो शाश्वत है। *"जीवात्माएं" "अनन्त"* है। हर व्यक्ति की भिन्न–भिन्न शुद्धात्मा एक ही है। आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व अंहकार एवं अज्ञान के कारण है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति में अलग–अलग आत्माएं मानी जाती है।

आत्मा और शरीर

शरीर एवं आत्मा एक सत्य के दो किनारे हैं (छोर)!

शरीर दृश्य – आत्मा अदृश्य है। पंखा चल रहा है बिजली दिखाई नहीं देती परंतु बिजली तो है। आत्मा शरीर के अन्दर है – दिखाई नहीं देती – शरीर गतिमान है यह तो दिखाई देता है। आत्मा–शरीर अलग नहीं है – बल्कि एक ही अस्तित्व की दो तरंगे हैं। *पदार्थ* और *ऊर्जा। शरीर अदृश्य आत्मा का ही दृश्य रूप है।*

जीवात्मा अपनी बासना पूर्ति क लिए बहुत स्वरूप शरीर धारण करता है पर कभी नष्ट नहीं होता है। *"आत्मा अमर"* है।

भारतीय इतिहास – धर्म ने आत्मा को सब माना है *आत्मा शरीर* को अपने निवास के लिए इस्तेमाल करता है। शरीर का महत्व एक घर से ज्यादा नहीं है। आत्मा एक सूक्षम तत्व है। यह विज्ञानकों की पकड़ से बाहर है आत्मा को जानने का एक ही मार्ग है वह है ध्यानावस्था। इसका अनुभव समाधि से होता है। *"आत्मा"* का अलग शरीर है जिसे *"सूक्ष्म तत्व"* कहते हैं। यह *"जीवात्मा"* के साथ

छाया की भांति संयुक्त रहता है इसका दूसरा शरीर *"भौतिक"* शरीर है। वह पांचतत्वों का बना है। यह शरीर भी इसका अभिन्न अंग है। *"आत्मा"* की अभिव्यक्ति इसी शरीर से हुई है। इसके बिना आत्मा को नहीं जाना जा सकता। आत्मा अपनी वासना पूर्ति के लिए इसे धारण करता है। – अपनाता है। जर जर होने पर खराब होने पर इसे छोड़ देता है फिर शरीर ग्रहण कर लेता है। *"आत्मा"* की *उपस्थिति* (Presence) से सभी कोशिकाएं जीवित रहती ह। *शरीर से आत्मा निकल जाने पर* वे *"मृत"* हो जाती है शरीर भी "मृत" हो जाता है।

मृत्य शरीर में आत्मा का प्रवेश होने पर दुबारा जी उठता है। शरीर हर जन्म में नया स्वरूप बदल कर सामने आता है परंतु जीवात्मा वैसा ही रहता है। इसका महत्व मशीन की भांति है। मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार उसके कर्मचारी हैं। मन इस का (मैनेजर) (व्यवस्थापक) इन्तज़ाम करने वाला है। जो सम्पूर्ण व्यवस्था करता है। ये सब कुछ आत्मा रूपी शक्ति से संचालित हैं। "मृत्यु" पर आत्मा ही *शरीर* को अपने से अलग देखता है। शरीर आत्मा को नहीं देखता। क्योंकि आत्मा ही दृष्टा है। जीवन में जितनी भी घटनाएं घटती हैं उनका आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता – मन – अंहकार पर पड़ता है इसके लिए यह ही जिम्मेदार है।

कुण्डलिनी शक्ति

शरीर के अन्दर 'ऊर्जा' का जो केन्द्र है उसे "कुण्डलिनी" कहते हैं। यह सुप्तवस्था में है सोइं अवस्था में है। शरीर को जितनी शक्ति (Energy) की जरूरत है उतनी शक्ति उसे खुद मिलती रहती है। यही जीवन शक्ति का केन्द्र है। खास कामों के लिए शरीर को कुछ ज्यादा शक्ति की आवश्यकता होने पर वह यहीं से प्राप्त होती है।

सामान्य व्यक्ति (Normal Man) इसका 15% इस्तेमाल (प्रयोग)

करता है बाकी सुप्त पड़ी है। इस को विधिपूर्वक जागृत भी किया जा सकता है। इसको जागृत करने के लिए हठयोग में विधियां हैं। परंतु वह सामान्य व्यक्ति के लिए उपयुक्त नहीं है। उसकी जागृति विस्फोट के साथ होती है। अगर किसी सद्गुरू की देखरेख में तैयारी न हुई हो तो मनुष्य पागल भी हो सकता है। मृत्यु भी हो सकती है। कई सामान्य विधियां भी है, जिससे धीरे–धीरे जागृत किया जा सकता है। शक्ति के जाग्रण से मुनष्य को *"अतीन्द्रिय"* ज्ञान होता है।

शक्ति सब में बराबर है। *कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से मनुष्य को पहले जीवात्मा का ज्ञान होता है* अनुभव होता है, इससे उसे भिन्न आत्माएं ज्ञात होती हैं। इसके बाद आत्मा का अनुभव होता है। जो समष्टि गत आत्मा है। यही ब्रह्म का स्वरूप है। कुण्डलिनी जागरण से परमात्मा की थोड़ी सी झलक मिलती है। उसे पाने के लिए आत्मा को भी खोना पड़ता है नहीं तो यात्रा यहीं पर अवरुद्ध हो जाती है रुक जाती है जब *"अतिन्द्रिय"* ज्ञान होता है तब *शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, आत्मा* – सिद्धियां अंहकार आदि के अनेक कटु एवं लुभावने दृश्य सामने आते हैं अगर आप इनमें कहीं भी ठहर गए – मन ठहर गया तो यात्रा अवरूद्ध हो जाती है। जो मनुष्य *मन – अंहकार* को नहीं खोना चाहता वह *आत्मा* पर ही रुक जाता है उसकी आगे की यात्रा अवरुद्ध हो जाती है। *आत्मा* को भी खोने पर उसे *मुक्ति* का अनुभव होता है।

यहीं *"निर्वाण और मोक्ष है"* जो जीवात्मा की अन्तिम अवस्था है। यही *"परमगति"* है। ऊर्जा (Energy) का यह कुण्ड बहुत शक्ति वाला है इसमें से कितना ही निकालो यह कम होता ही नहीं। इसका तल्लुक उस *"ऊर्जा"* भण्डार से है यहां से सारी सृष्टि का संचालन होता है।

आत्मा की अमरता

आत्मा अमर है – एवं शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं

होता। "पुनर्जन्म" भी ग्रहण करता है। इसका शरीर से थोड़े समय ही संबंध बना रहता है। शरीर से अलग होकर भी जीवित रहता है। शरीर के नाश होने पर आत्मा जन्म लेने वाले *"प्राणियों"* में पुनः प्रवेश करता है।

थलचर, नभचर, जलचर प्राणियों में होते–होते 3 सहस्त्र वर्षों में पुनः मनुष्य शरीर में लोट कर आता है।

पुराने *"मिश्र"* के *"निवासी"* रहने वाले लोग मानते थे कि *"आत्मा"* अपने अलग अस्तित्व में रहता है और शरीर से संबंध विच्छेद (काट) नहीं कर सकता। "मृत" शरीर के नाश होने पर उस आत्मा को पुनः मृत्यु और विनाश का दुःख भोगना पड़ता है।

मृत्यु के बाद आत्मा संसार भर स्वतंत्रता पूर्वक विचरण करता है परंतु रात के समय सदा दुःखी भूखा प्यासा अपने मृत शरीर के पास लौट आता है। अगर पुराने शरीर में कोई चोट आ जाए तो आत्मा के भी उसी भाग में चोट आ जाती है। *"मिश्र"* निवासियों ने *"मुर्दों"* की रक्षा के लिए *"ममीज"* का अविष्कार किया।

"आर्य" जाति का विश्वास था कि आत्मा शरीर से अलग रह कर अधिक आनन्द से रहती है। उन्होंने मुर्दो को शीघ्र जलाने की व्यवस्था की। वह यह मानते थे कि शरीर को नष्ट करने से *"आत्मा"* का उससे मोह छूट जाता है। जिससे उसे अपनी अगली यात्रा में सहायता मिलती है। नहीं तो वह शरीर से ही बंधा रहता है।

"ईसामसीह" के वक्त में (फेरिसी) लोग मानते थे कि आत्मा भिन्न–भिन्न शरीर में भटकती रहती हैं *"ईसामसीह"* जी ने भी कहा था कि "पैगम्बर इलियास ही" *"जानवेरिटिस्ट"* बनकर पुनः आए

थे। *"पाइथोगोरस"* पहले यूनानी थे जिन्होंने यूनान को *"पुनर्जन्म"* का सिद्धांत दिया।

आत्मानुभव

परमात्मा का ज्ञान जब होता है उसे ही *"आत्मज्ञान"* कहा जाता है महापुरुष उसे ही आत्मज्ञान कहते हैं। हर एक व्यक्ति शरीर नहीं आत्मा है। इस लिए वही परमात्मा है, वही भगवान है। इसलिए *"आत्मज्ञान"* होने पर वह *"अंह ब्रह्यास्मि"* कह सकता है। यदि उसमें अभी (अंहकार) है तो वह ऐसा नहीं कह सकता।

अंहकार के कारण ही वह *जीवात्मा और ईश्वर* में भेद देखता है। उसे "द्वैत" ही दिखाई देता है। तब वह *"ईश्वर"* पुत्र है शुद्ध आत्मा और *ईश्वर* में भिन्नता नहीं है। यह भिन्नता जीवात्मा के तल तक की है।

आत्मज्ञान के बाद उसके सब कार्य नाटक की तरह होते हैं। जिन से वह अलग होकर दृष्टा मात्र हो जाता है। फिर कर्म उससे लिप्त नहीं होते – न बंधन का कारण बनते हैं।

आत्मज्ञान से पूर्व किए गए सभी कर्मों का बंधन होता है। उनका फल भोगना पड़ता है। आत्मज्ञान से आचरण बदल जाता है फिर भी आचरण बदलने से आत्मज्ञान नहीं होता। इससे जीवन पवित्र बनता है किन्तु आगे की यात्रा आवश्यक है।

धर्म का मार्ग यही है आत्मज्ञान करना। वास्तविकता धर्म नैतिकता से ऊपर की है। अध्यात्म में प्रवेश होने पर ही वह धार्मिक होता है। व्यक्ति आत्मज्ञान के बाद ही परिपूर्ण होता है। नैतिकता का संबंध मन तक ही है ताकि उसे बुराई से बचा ले।

धर्म इस मन के पार की अवस्था है। "मुक्ति" "आत्मज्ञान" से ही होती है। "नियम" "संयम" का संबंध भी मन तक ही है। "शास्त्र" पढ़ने एवं आचरण से ज्ञान नहीं होता। स्वयं देखने से मिलता है। *आत्मा* के ऊपर जमी *"धूलि"* को झाड़े बिना आत्मानुभव संभव नहीं।

"आत्मज्ञान" में *"मृत्यु"* का अनुरूप होता है। तभी "अमृत" की उपलब्धि होती है।

मृत्यु से ही नया जीवन मिलता है पुराना ढोते रहने से नया नहीं मिलता। नये के लिए पुराने का त्याग आवश्यक है। *नया मकान, दुकान, होटल बनाने के लिए पुराना गिराना जरूरी है।*

पुराने खण्डहर शुदा महल पर नया महल नहीं बन सकता जब साधक को *आत्मानुभूति* होती है तब वह अपने को शरीर से अलग देख लेता है। उस वक्त उसे *प्रतीति* होती है मैं शरीर नहीं *आत्मा* हूं उसी समय उसे *अमृतत्व* का अनुभव होता है। धर्म चेतना से जुड़ा हुआ शास्त्र है।

मनुष्य शरीर नहीं *आत्मा* ही है। आत्मा ही उसका वास्तविक स्वरूप व स्वभाव है। *"आत्मा" "निर्वस्त्र"* ह शुद्ध है। इस पर जो आवरण है वे मनुष्य ने ओढ़ रखे हैं जिससे उसे *"आत्मा"* का पता नहीं चल पाता। यह आवरण झूठे हैं, माया है, "माया" के पर्दे हैं। सभी भ्रम तथा अज्ञान के कारण है जो ज्ञान से ही हटेंगे। और कोई उपाय नहीं है। अपने असली रूप चेहरे का पहचानना ही *"मुक्ति"* है। जब तक *"ब्रह्म"* और *"आत्मा"* का मेल नहीं हो जाता। एकता का बोध नहीं हो जाता तब तक सौ कल्पों में भी *"मुक्ति"* नहीं हो सकती। जीवात्मा तथा परमात्मा का जो भेद है वह सदा बना ही रहेगा।

जीवात्मा का स्वरूप

जीवात्मा और परमात्मा में अभेद संबंध

पूरे जड़ चेतनात्मक जगत् का एक ही कारण वह *"परब्रह्म"* है अन्य सभी उसी के कार्य हैं।

चेतनात्मक सृष्टि का जब विस्तार होता है तो उस वक्त उस की शक्तियां प्रकट होती है। जीवात्मा *"ब्रह्मा"* की *"परा"* प्रकृति का ही

स्वरूप है। *"जड़"* समुदाय *"अपरा"* शक्ति का स्वरूप है। इसलिए *"जीवात्मा"* उस *"ईश्वर"* का अंश होने के कारण अभिन्न है।

जीवात्मा की परमात्मा से भिन्नता नहीं है। परंतु प्रकृति के मन वुद्धि, चित्त, अंहकार आदि के आवरणों के कारण भिन्न भी हो गई है। उपासना की दृष्टि से इन दोनों की एकता स्थापित की जाती है। किन्तु कारण कार्य भाव से पिता पुत्री की भांति एवं दूध दही की भांति – दूध दही की भांति ये दोनों अभिन्न होते हुए भी भिन्न हो गई है। दोनों के गुणों में भिन्नता आ गई है। जिस प्रकार दही दूध का ही रूप है किन्तु स्वयं दूध कैसे हो सकता है। दही और दूध भिन्न भी नहीं है तथा भिन्न है भी। ऐसा ही *"ब्रह्म"* और जीवात्मा है। जैसे दही द्वारा दूध नहीं हो सकता – वैसे ही विकार को प्राप्त हुई *"जीवात्मा"* *"ब्रह्म"* नहीं हो सकती। यह अनादि काल से है।

जब समस्त विकारों का त्याग कर देती है वह शुद्ध आत्मभाव को प्राप्त हो जाती है जो स्वयं ब्रह्मा ही है। इसी स्थिति को *मुक्ति* कहते हैं।

साधना के समय में ऐसी अनुभूति हो जाती है कि "मैं" तथा "ब्रह्म" भिन्न नहीं है। मैं उसी का परिवर्तित स्वरूप हूं किन्तु जानना और जाना दो अलग स्थितियां हैं।

परमात्मा सर्वज्ञ ह जीवात्मा उसे जानने वाला है। जानने वाला स्वयं सर्वज्ञा कैसे हो सकता है। विधुत को जानने वाला कभी स्वयं विधुत नहीं हो सकता। परमात्मा और जीवात्मा के धर्मों में भेद हो जाने से जब तक वह अपने धर्मों का सम्पूर्ण रूप से परित्याग नहीं कर देती तब तक परमात्मा से भिन्नता बनी रहेगी।

जीवात्मा और परमात्मा में भिन्नता

जीवात्मा भी परमात्मा की ही भांति व्यापक है। प्रकृति के आवरणों के कारण उसका शरीर निर्मित हो गया है जिससे उसके *"स्थूल"* *"शरीर"* का निर्माण हो गया है। इसी कारण शरीर के आवरण के

ही कारण प्रलयकाल में भी अपना अलग विभाग बना रहता है। सृष्टि काल में भी उसके शरीरों का मिश्रण नहीं होता। इसी कारण से जितने शरीर है उतनी ही जीवात्माएं हो गई हैं। जिससे उस की व्यापकता सीमित हो गई। सभी व्यक्तियों की जीवात्माएं भिन्न–भिन्न है, "यही" मैं का स्वरूप है।

वह शरीर का "अधिष्ठाता" है और "परमात्मा" सर्वव्यापी है। जीवात्माएं अनेक हैं किन्तु परमात्मा एक है। "जीवात्मा" अंहकार से ग्रस्त होने के कारण राग, द्वेष, वासना, इच्छा, कर्म, पुरुषार्थ, सुख, दुख जानना आदि गुणों वाली है। परमात्मा इन सब से परे इनका साक्षी है। जीव व्याप्य है ईश्वर व्यापक है। जीवात्मा आसक्ति के कारण भोग एवं उनके फलों का भोक्ता है – परमात्मा इनका *'साक्षी'* और *"दृष्टा"* मात्र है।

"जीवात्मा" उपासक है और *"ब्रह्म"* उपास्य है। *"जीव अल्पज्ञ"* है और *"ब्रह्म"* सर्वज्ञ है। जीव *"ईश्वर" "अधीन"* है – परमात्मा उसका "शासक एवं स्वामी" है। *"ब्रह्म"* जानने योग्य है। जिसके जानने से जीवात्मा को मुक्ति लाभ मिलता है और जीवात्मा जानने वाला है। ब्रह्म आनन्दमय है – जीवात्मा दुःखों से घिरा रहता है – देवता मनुष्यों से थोड़ा ऊपर है *"परमेश्वर"* कारण है – जीव उसका कार्य है। दोनों अनन्य होने से ही *"अयमात्मा" "ब्रह्म"* कहलाते हैं। *"अयमात्मा ब्रह्म"* का अर्थ है समाधि दशा में जब योगी को 'परमेश्वर' प्रत्यक्ष होता है योगी कहता है जो मेरे में "व्यापक है" वही "ब्रह्म" सर्वत्र व्यापक है। जैसे शरीर में जीवात्मा है उसी प्रकार जीवात्मा में परमेश्वर व्यापक है। परमेश्वर शरीर में जीव को प्रवेश करा कर जीव के भीतर स्वयं अनुप्रविष्ठ हो जाता है।

परब्रह्म ही सब का अन्तरात्मा है।

जीवात्मा सब की अन्तरात्मा नहीं है। परमात्मा ही सर्वश्रेष्ठ दृष्टा एवं सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता है। जीवात्मा दृष्टा होते हुए भी उसका दृष्टापन

परमेश्वर के ही कारण है। जीवात्मा अनु स्वरूप है – वह परमात्मा की भांति *"विभु"* स्वरूप नहीं है – इस प्रकार जीवात्मा ईश्वर से भिन्न हो गया। जब समस्त आवरणों का परित्याग कर देता है तो भिन्नता मिट जाती है। उस समय वह *"ब्रह्म"* में इस भांति लय हो जाता है – जैसे बूंद सागर में मिल जाती है।

जीवात्मा की अनादिता

जीव और उसके कर्म अनादि है।

प्रलयकाल के समय में भी उस की सत्ता एवं सूक्ष्म विभाग का अभाव नहीं होता। जीव और उसके कर्म *"ब्रह्म"* में सूक्ष्म रूप में विद्यामान रहते हैं जैसे नमक पानी में घुल कर भी अपनी सत्ता को नहीं मिटा देता। प्रलयकाल के समय जीव अपपने आप मुक्त नहीं होता। नये कल्प में फिर उसी के अनुसार रचना होती है। जीवात्मा नित्य *"शाश्वत"* व *"पुरातन"* है।

शरीर का नाश होने से इस का नाश नहीं होता। जीवात्मा नित्य है उसका कभी नाश नहीं होता। मृत्यु के बाद अपने कर्म और संस्कारों के अनुसार प्रलोक में जा कर पुनः दुबारा नया शरीर धारण करता है। प्रलयकाल में जीवात्मा अपने कारण शरीर सहित अव्यक्त रूप से *"ब्रह्म"* में विलीन रहता है तथा सृष्टि काल में पुनः सूक्ष्म एवं स्थूल रूप से प्रकट होता है।

"जीवात्मा" जन्म और *"मृत्यु"* से रहित है। न इसे उत्पन्न किया जा सकता है – न नाश ही होता है। यह अलग–अलग अवस्थाओं में यात्रा कर रहा है। *"भौतिक दृष्टि"* से यह अपनी यात्रा स्थूल शरीर में प्रवेश करके करता है। तात्विक दृष्टि से यह भिन्न भिन्न मानसिक भूमिकाओं से गुजर कर लगातार विकास करता है। शरीर से पूर्व भी इसका अस्तित्व था तथा मृत्यु के बाद भी रहेगा और है।

शरीर तैयार से पहले प्रवेश करता है और व्यर्थ होने पर उसे छोड़

देता है। शरीर के पहले घटक का निर्माण माता–पिता के *"रासायनिक सैल"* मिलने से होता है। उसमें आत्मा प्रवेश कर जाती है। ऐसा घटक अगर प्रयोगशाला में निर्मित किया जाये तो जीवात्मा उस में प्रविष्ट हो जायेगी। जीवात्मा को तो अपनी वासना पूर्ति के लिए केवल माध्यम की जरूरत है। परंतु मुक्तात्माएं ही निर्वासनामय होने से इसमें प्रवेश नहीं करेगी।

जीवात्मा ऐसे माध्यम को चुनती है जो उस प्रकृति के अनुकूल हो और उसकी वासना पूर्ति का माध्यम बन सके। जीवात्मा स्वेच्छा से नहीं बल्कि संस्कारों से वांछित होकर प्रवेश करता है। जब तक उसे *"मुक्तावस्था"* प्राप्त नहीं होती तब तक जीवात्मा की यात्रा शरीर से *"परलोक"* एवं परलोक से शरीर में लगातार चलती रहती है।

जीवात्मा और मन

जीवात्मा जब मन रहित होती है उसी को ही *"मोक्ष"* कहते हैं। जीवात्मा कर्ता है – इन्द्रिया उसके उपकरण (हथियार) हैं जिससे वह कार्य करती है।

"शुद्ध आत्मा" के साथ जब कुदरत के तीन गुणों यानि (सत्व–रज–रम) का संयोग होता है तो *"चित्त"* का आविर्भाव होता है। समष्टि में इसी को *"महतत्व"* कहा जाता है। इसी चित्त से बुद्धि उत्पन्न होती है।

अब क्या *ग्रहण करना* है – क्या *त्यागना* है – अच्छा या बुरा – यह निर्णय करना बुद्धि का कार्य है। इसी बुद्धि से *"अंहकार"* उत्पन्न होता है। अपनी सत्ता के बोध को ही अंहकार कहते हैं। अंहकार से जो पांच तन्मत्राएं उत्पन्न होती हैं इसी से "मन" और इंन्द्रियों का विकास होता है। चिन्तन–विचार इन्द्रियों को प्रेरित करना तर्क आदि मन के कार्य हैं।

इस प्रकार पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मन्द्रियों – इन्द्रियों के पांच

विषय तथा मन–इन सोलह विकारों से युक्त जीवात्मा का स्वरूप है। यह जीवात्मा ही मन को प्रेरित करता है।

जीवन यह तो जीवात्मा का गुण है। मन जीवात्मा की शक्ति से कार्य करता है – मन भी जड़ है, मन और आत्मा का संबंध मोक्ष पर्यान्त रहता है। पुर्नजन्म का कारण भी मन ही है – यह नए जीवन में भी साथ रहता है – मृत्यु पर सिर्फ पांच भूत छूटते हैं।

जीवात्मा का लिंग निर्धारण

संस्कृत में *"आत्मा"* शब्द नपुंसक लिंग। आत्मा का कोई स्वरूप नहीं न स्त्री न पुरुष। स्त्री और पुरुष के रूप में जन्म लेने का आधार जीवात्मा से जुडी मान्यताएं ही हैं। जीवात्मा जैसे इच्छा करता है वैसे ही संस्कार गहरे हो जाते हैं उसी से उसके व्यक्तित्व का निर्धारण करते है। कई बार किसी विशेष अनुभव प्रतिक्रिया से इनमें अचानक परिवर्तन आ सकता है। यह मान्यता अन्तः करण से संबंधित है। जीवात्मा पुरुष रूप धारण करेगी या स्त्री रूप यह अंह भाव की मान्यता पर निर्भर है। जैसी इच्छा उभरेगी वल्वती होगी वैसी ही मान्यताएं जड़ जमा लेंगी तथा वैसा ही लिंग निर्धारण भी होगा।

वाल्मीकी – अजामिल – अंगुलिमाल ने अपनी मान्यताएं बदलीं तो उनका व्यक्तित्व ही बदल गया। लिंग परिवर्तन भी ऐसे ही मान्यताएं बदलने से होता है। जिस समय कोई जीवात्मा अपने वर्तमान लिंग के प्रति गहराई से असंतुष्ट होती है या उस की मूल–भूत प्रवृतियों की दिशा ही बदल जाती है तो लिंग परिर्वतन समेत व्यक्तित्व में अनेक परिवर्तन हो सकते है। इसी से इस जन्म की नारी अगले जीवन में पुरुष और इस जन्म का पुरुष अगले जन्म में नारी बन सकता है।

व्यक्ति में जो प्रवृत्तियां प्रधान हो जाती हैं– जीवात्मा का यही लिंग बन जाता है। सामान्य तौर पर हर व्यक्ति में दोनों ही लिंगों की कुछ प्रवृत्तियां विद्यामान रहती हैं परंतु प्रधानता एक की होती है। विज्ञान यानि

(Science) का हर एक विद्यार्थी जानता है कि प्रत्येक मनुष्य के भतीर उभय लिंगों का अस्तित्व होता है। नारी के भीतर नर सत्ता भी होती है और नर में नारी सत्ता भी होती है जिसे *'एनीमस'* कहते हैं।

इसी प्रकार नर के भीतर नारी की सूक्ष्म सत्ता भी रहती है जिसे *"एनिमा"* कहते हैं।

प्रजनन अंगों के गहार में विपरीत लिंग का अस्तित्व भी होता है – किसी–किसी में विपरीत लिंग व्यक्तित्व प्रबल हो उठता है। ऐसी स्थिति में शल्य क्रिया (Surgery) द्वारा परिवर्तित लिंग वाला व्यक्तित्व उभर आता है।

जिस मनुष्य में नारी प्रवृत्तियों की प्रधानता होती है वह अगले जन्म में नारी बन जाता है तथा जिस नारी में पुरुष प्रधान प्रवृत्ति होती है वह अगले जन्म में लड़का वन सकता है।

ब्राजील की रहने वाली श्रीमति इडालारेन्स बारह वार वच्चो की मा वन चुकी थी। उसकी सन्तान प्रजनन की सम्भावना क्षीण हो चुकी थी किन्तु उसकी लड़की 'इमीलिया" को लड़की होने से बहुत नफरत थी। उसने कहा मैं पुनः तुम्हारे गर्भ से पुत्र रूप में जन्म लेना चाहती हूं। बीस वर्ष की उम्र में जहर खा लिया। कुछ ही दिनों वाद वह उसी मां से पुनः पुत्र रूप में उत्पन्न हुई। बाप ने उसका नाम *"पोलो"* रखा। उसकी आदतें *'इमीलिया"* जैसी ही थीं।

भारत के *"सोलन"* शहर के रहने वाले *"जिया लाल"* सुनार की तीसरी लड़की *"सुनीता"* के चार वर्ष की उम्र में आप्रेशन के उपरांत लड़का बन जाने की भी घटना ताजी है। सितम्बर *"1978"* के आरम्भ में उसका आप्रेशन "छः डाक्टरों" ने उसके मूत्र मार्ग को पुरुषों के मूत्र मार्ग में आसान समझ कर आप्रेशन किया वह लड़का बन गई।

महाभारत में भी *"शिखण्डी"* का उदाहरण है कि वह पहले स्त्री थी फिर बाद में पुरुष बन गया। व्यक्ति में उभय "लिंगों" के अस्तित्व के कारण ही भारतीय अध्यात्म ने हजारों वर्ष पूर्व अर्द्ध–नारीश्वर की बात कही थी।

विज्ञान आज सिद्ध कर रहा है। भारतीय अध्यात्म का आधार पूर्ण वैज्ञानिक है।

स्थूल - सूक्ष्म व कारण शरीर

आत्मा पांच कोषों से आवृत है। यह कोष "अन्नमय", "प्राणमय", *"मनोमय", "विज्ञानमय"* एवं *"आनन्दमय"* हैं। जो इन पांचों कोषों को पुनः आत्मा में लय कर देता है वही "मुक्त" कहलाता है। आत्म तत्व *"अव्यक्त"* है।

शरीर, मन और बुद्धि व्यक्त है। आत्मा, मन बुद्धि और शरीर का संयुक्त रूप ही मानव है। आत्म, जड़ और चेतन दोनों में व्याप्त हैं। उन दोनों का भेद इन्द्रिय विकास से है। जिनमें इन्द्रियों का विकास हो गया है वह चेतन है। जिनमें नहीं हुआ वह जड़ कहा जाता है। *"अन्नमय"* कोष स्थूल शरीर है – जिनका पोषण अन्न से होता है। पंचभूत *"स्थूल"* होकर *"स्थूल"* शरीर का निर्माण करते हैं। स्थूल शरीर के कारण *"ब्रह्म"* जगत प्रतीत होता है। *"जन्म–मरण", "बाल्यावस्था", "युवावस्था", "वृद्धावस्था"* इसी शरीर की अलग–अलग अवस्थाएं है।

शरीर के समस्त कर्म तथा अनुभव इसी शरीर से होते हैं। अध्यात्म साधना का यही एक माध्यम है – इसी से जीवात्मा को परमात्मा का ज्ञान होता है। यह शरीर किसी प्रकार भी तुच्छ नहीं है बल्कि सबसे महत्वपूर्ण है – इसे व्यर्थ मान कर – उसे सताना – उत्पीड़न करना उचित नहीं है।

इसको ईश्वर का वरदान समझ कर इसका सदुपयोग करना चाहिए। दुरुपयोग करने पर शरीर दोषी नहीं है। यह जीवात्मा का उत्तम सेवक, सहभागी एवं आज्ञाकारी सेवक है। इसे जैसे रखो वैसे ही रह लेता है। चाहे महल में रखो चाहे मंदिर में यह सब में राजी है। हर हाल में रह लेता है। इसलिए इसे सजा देना पागलपन है।

शरीर के कार्यों का दायित्व मन पर है। उस पर नियन्त्रण

आवश्यक है। अच्छा–बुरा सब इसी से होता है। स्वर्ग, नरक और मुक्ति में भी यही ले जाता है। सारी साधना मन को काबू करने की है।

सूक्ष्म शरीर

स्थूल शरीर के पीछे एक *"सूक्ष्म"* शरीर भी है। वही इस स्थूल शरीर का कारण है।

"सूक्ष्म" शरीर 10 इन्द्रियों, पांच प्राण, पांच सूक्ष्म भूत, अन्तः करण (मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार) अविद्या, काम और कर्म से बना है। यह चेतन शक्ति से संयुक्त होकर कर्मफलों का अनुभव करने वाला है। जब तक इसे अपने सत्य स्वरूप (आत्मा) का ज्ञान नहीं होता तब तक यह अनादिकाल तक जीवित रहता है। इसकी मृत्यु या नाश होने पर ही जीवात्मा – मुक्तावस्था को प्राप्त होती है।

चिदात्मा पुरुष के सभी व्यापारों का कारण यह सूक्ष्म शरीर ही है। स्थूल शरीर इसी सूक्ष्म शरीर (लिंग शरीर) के अधीन है। स्थूल शरीर द्वारा जितने भी कर्म किए जाते हैं उन सभी कर्मों की जिम्मेदारी इसी की है।

आदमी का मनः *"प्रधान लिंग"* शरीर की सहायता से कर्म करता है। मृत्यु के बाद भी यह मन के साथ ही रहता है। हमारे शरीर के द्वारा जितने भी कर्म होते हैं उनकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेता है। यही कारण है कि इसे दुबारा जन्म लेना पड़ता है। मृत्यु के बाद जीवन में किए गए सब अनुभव संस्कार रूप से इसी में जमा रहते हैं।

सूक्ष्म शरीर ही (जीवात्मा) का (स्व–शरीर) है। जब तक दूसरा शरीर धारण नहीं कर लेता तब तक वह पहले के शरीर के अभिमान को नहीं छोड़ता। जीव के जन्मादि का यही कारण है। इसी से *"हर्ष–शोक" "भय", "सुख–दुख"* आदि का अनुभव होता है।

मृत्यु के समय यह जीवात्मा स्थूल शरीर को त्याग कर सूक्ष्म शरीर में *"प्रवेश"* करता है जो मृत्यु के बाद भी बना रहता है। बार–बार

जन्म लेकर यह जीवात्मा जीवन में प्राप्त अनुभवों के आधार पर उच्चता का अनुभव करती हुई लगातार विकास को प्राप्त होती है।

जीवात्मा का विकास भौतिक शरीर के बिना नहीं हो सकता। इसलिए बार–बार जन्म लेना आवश्यक है। मृत्यु के बाद इन अनुभवों का पाचन होता है और नए अनुभव प्राप्त के लिए फिर नया शरीर धारण करता है। भौतिक शरीर धारण करना ही जीवात्मा का अवतरण है यह उसकी विकास क्रिया का अंग है।

मनुष्य की इच्छाएं, वासनाएं, कामनाएं, आकांक्षाएं, भावनाएं, अनुभव, ज्ञान, विचार ज्यों के त्यों बने रहते हैं। इन सब का संग्रहीत भूत बीज ही हमारा सूक्ष्म शरीर है।

इसी से "जीवात्मा" आगे की यात्रा पर चलती है। इसी लिए दुबारा–दुबारा जन्म लेना पड़ता है। जिस मनुष्य के यह सब नष्ट हो जाते हैं उसके लिए जाने की जगह नहीं बचती। फिर नए जन्म का कोई कारण नहीं रह जाता।

"सूक्ष्म" शरीर *"स्थूल"* शरीर का एक यन्त्र की भांति उपयोग करता है। जैसे यह यन्त्र जब बेकार हो जाता है तो वह उसे फटे वस्त्र की भांति फैंक कर नया *"स्थूल" "धारण"* कर लेता है। विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में भी कल्पनाओं के दर्शन होते हैं।

सूली के बाद *"जीसिस"* का पुर्नजीवित होकर लोगों को चालीस दिन तक दिखाई देना – यह उनका सूक्ष्म शरीर ही था। *"मनुष्य"* के सारे अनुभव *"स्थूल"* शरीर के साथ हैं। *"योगियों"* के अनुभव *"सूक्ष्म"* शरीर के। योगियों के अनुभव परमात्मा का अनुभव है।

स्थूल और सूक्ष्म शरीर अनेक हैं परंतु परमात्मा एक है। आत्मा एक है *"ब्रह्म"* एक है। जिसने इस सूक्ष्म शरीर को खत्म कर दिया उसका जन्म मरण नहीं होता।

सूक्ष्म शरीर *"न्यूट्रोन"* नाम के कणों से निर्मित होता है *"न्यूट्रोन"* कण *"आदृश्य"* हैं नहीं दिखने वाले हैं। आवेश रहित और इतने

हल्के होते हैं कि इनमें मात्रा और भार नहीं के बराबर है। यह स्थिर नहीं रह सकते–प्रकाश की तीव्र गति से सदा चलते रहते है। इन कणों को यदि किसी दीवार के पास छोड़ें तो दीवार को पार कर यह अन्तरिक्ष में विलीन हो जाते हैं। भौतिक कोई भी वस्तु इन्हें नहीं रोक सकती। *"परामनोवैज्ञानिक"* खोजों के मुताविक – सूक्ष्म शरीर किसी भी स्थान पर किसी भी *"परिमाण"* में अपने को प्रकट व पुर्नलय कर सकता है।

वैज्ञानिकों ने इस विषय में सफल प्रयोग भी किए हैं और पाया है कि इस *"स्थूल"* शरीर के भीतर एक और शरीर भी है जिसे *"सूक्ष्म शरीर"* या भाव शरीर कहते हैं। इसका प्रकाश स्थूल शरीर के इर्द–गिर्द चमकता रहता है। *"परामनोवैज्ञानिकों"* ने इस *"सूक्ष्म"* शरीर को देखा ही नहीं बल्कि इसके चित्र भी लिए हैं।

रूस के एक वैज्ञानिक दम्पति *"कीर्लियान तथा बेलेष्टिना"* ने मिल कर एक ऐसे कैमरे का निर्माण किया है जिससे मनुष्य व अन्य जीव जन्तुओं के *"सूक्ष्म"* शरीर के चित्र खीचें जा सकते हैं।

"चौकोस्लोविया" के वैज्ञानिक *"ब्रेतिस्लाव"* ने परीक्षणों द्वारा सिद्ध किया है कि जब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है तो उसके चारों और दिखाई देने वाला प्रभा मण्डल लुप्त हो जाता है। मृत्यु के समय (लपटें) और चिन्गारियां शून्य में विलीन हो जाती है। पुर्नजन्म के समय गर्भ में यह जीवात्मा अणु शरीर में प्रवेश करता है। अणु शरीर की प्रकृति के अनुसार ही आत्मा उसमें प्रवेश करती है *"श्रेष्ठ अणु में" "श्रेष्ठ आत्मा"* ही प्रवेश करती है।

मृत्यु के बाद साधारण आत्माएं "तेरह दिन" (13 दिन) के भीतर नए जन्म की खोज कर लेती है। "अधिक निकृष्ट" तथा "उच्च आत्माओं" को लम्बे समय तक रुकना पड़ता है। जिन्हें देवता आदि कहते हैं।

कारण शरीर

हर "सूक्ष्म" शरीर के पीछे "कारण शरीर" होता है। "सत्व", "रज" एवं "तम" गुणों से युक्त है। यही "सूक्ष्म" शरीर का कारण है "सत्व" गुण शुद्ध है लेकिन "रज" और "तम" के साथ मिलकर "कर्म" बंधन का कारण है। "प्रसन्नता" "आत्मानुभव", "परम शान्ति", "तृप्ति", "आनन्द" और परमात्मा में स्थिति यह "सत्व" गुण के धर्म है।

क्रिया रूप विक्षेप शक्ति रजोगुण की है जिस सनातन काल से विशेष क्रियाएं होती हैं। इससे राग, द्वेष, दुःख उत्पन्न होते हैं। काम, क्रोध, मोह, दय – दूसरों के दोष ढूंढना अभिमान – ईष्या--मत्सर यह रजोगुण के धर्म हैं। इन्हीं से जीव कर्मों में प्रवृत होता है।

यह रजोगुण ही बंधन का हेतु हैं तथा जन्म मरण का कारण है। अज्ञान, मूढता, आलस्य, प्रमाद, जड़ता, निद्रा आदि तम के गुण है। जाग्रत अवस्था का संबंध स्थूल से है। स्वपन का सूक्ष्म शरीर से "सुषुप्ति" का संबंध "कारण" शरीर से। इसे कर्म शरीर भी कहते हैं।

"कारण" शरीर "बीज" के समान है। इसी से अन्य दोनों शरीरों का निर्माण होता है। कारण शरीर सभी अर्द्ध चेतन का भण्डार है जिस में सारी शक्तियां और संस्कार "संस्कार गृहित" रहते हैं। मनुष्य के सारे "कार्य" गतियां" "व्यवहार" और परिस्थितियां इसी कारण शरीर के संग्रह से ही आती हैं।

यही कारण है कि शरीर मनुष्य का केन्द्र है। "कारण शरीर" सबसे महत्वपूर्ण है। दूसरे दोनों शरीर इसी से प्रभावित होते हैं। इसी कर्म से शरीर को दिए गए सुझावों का दोनों शरीरों पर आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। दैविक सुझाव देने पर वह ईश्वर हो जायेगा।

इसी कर्म शरीर का नियन्त्रण करके मनुष्य अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर सकता है। "स्थूल" शरीर का निर्माण "सूक्ष्म" शरीर से होता है। सामग्री "कारण शरीर" से प्राप्त होता है। इसकी "अभिव्यक्ति"

की अवस्था सुषुप्ति से है। जिसमें बुद्धि की समस्त "वृत्तियां" लीन हो जाती हैं और सब तरह का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। बुद्धि बीज रूप में ही स्थित रहती है।

"कारण शरीर" के बीच जो आत्मा है वह सूर्य की भांति है। शरीर ही परिवर्तन शील एवं स्थाई है। कारण शरीर से मुक्त होने पर ही *"जीवात्मा"* का *"ब्रह्म"* में लय होता है। इसके रहते वह मुक्तावस्था का अनुभव तो कर सकता है किन्तु अन्तर बना रहता है। जो द्वैत की स्थिति है। ज्यादातर आत्माएं यहां पर रुकी रहती हैं। इसलिए "द्वैत" को ही अधिक "प्रतिष्ठा" दी गई है। जीवात्मा की सर्वोच्च स्थिति तो "अद्वैत" ही है किन्तु उसे प्राप्त करना कठिन है।

"सूक्ष्म" शरीर "स्थूल" शरीर से भिन्न

"सूक्ष्म शरीर" स्थूल शरीर से भिन्न है। कोई भी व्यक्ति अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से योगिक क्रियाओं तथा अन्य थोड़ी सी साधना से "सूक्ष्म" शरीर को "स्थूल" शरीर से अलग कर सकता है। कभी–कभी निद्रा, अचेतन अवस्था में यह भौतिक शरीर से अलग होकर कहीं विचरण कर सकता है। इस पर दिग्काल के बंधन लागू नहीं होते।

सूक्ष्म शरीर के अलग होने पर यह स्थूल शरीर से "रज्जत रज्जु" से बंधा रहता है। सूक्ष्म शरीर को अपने से बाहर निकाल कर पुनः अपने शरीर में प्रवेश करना कठिन है। इसके लिए पूर्व तैयारी की आवश्यकता है। लेकिन ऐसा करने से आत्मा और शरीर के बीच में जो संबंध है वह टूट जाता है। आत्मा रूपी जो ऊर्जा है उसकी गैर हाजिरी में जो हमारे "अन्दर कोष" हैं बहुत मृत हो जाते हैं। फिर स्थूल शरीर में विकृति आ जाती है। जिस के कारण "आयु" भी कम हो जाती है। ऐसी क्रिया "अप्राकृतिक और अस्वाभाविक" है (Natural Process नहीं है)।

सभी "अस्वाभाविक" क्रियाएं शरीर को हानि पहुंचाती हैं। योग

साधना करने वाले ज्यादातर व्यक्ति इन "अस्वाभाविक" क्रियाएं करने से रोग ग्रस्त हो जाते हैं। जिनका इलाज भी संभव नही है। *"सूक्ष्म"* शरीर को "स्थूल" से अलग करने के कई उदाहरण है।

1) वुडलैण्ड (अमेरिका) के डाक्टर "जियोवर्नहार" ने एक ऐसा अनुभव किया जिससे वह इच्छा मात्र से अपने 'गन्तव्य' पर पहुंच गए। उन्होंने लिखा है कि 1971 में उनका पुत्र वियतनाम के मोर्चे पर था। वह किसी खतरे में था। वह उन्हें पुकार रहा था। इसके साथ ही उनका शरीर हवा से भी हल्का हो गया। तुरन्त "वुडलैण्ड" से "वियतनाम" पहुंच गए।

वहां जाकर देखा लड़का तम्बू में फंसा है – चारों और आग लगी है – उसके ऊपर एक लोहे का ट्रंक गिर पड़ा है और वह नीचे दब गया। उसने लड़के को ट्रंक के नीचे सा निकाला और तम्बू के बाहर जा कर खड़ा किया। उसका शरीर ठीक होने लगा – जब आंखे खोली तो देखा कि जैसे तन्द्रा टूटी है।

उनकी पत्नी उनके पास बैठी है अनुभव हुआ कि जैसे असामान्य व्यक्ति है। छः महीने बाद जब "जान" छुट्टी पर लौटा तो उसने उस अग्निकांड में फंस जाने व चम्तकारी ढंग से बचने की घटना बताई। यह सूक्ष्म शरीर ही था। ऐसे अनगिण्त हादसे सामने आते हैं। प्रसिद्ध मनोचिकित्सक विज्ञानी *"डा. थैयला मौस"* ने सिद्ध कर दिखाया है कि " कोई भी व्यक्ति अपनी चेतना को अपने शरीर से बाहर निकाल सकता है और पल भर में हजारों मील दूर जा सकता है" शरीर के नियम बन्धनों से मुक्त मानवी चेतना को प्रमाणित करने के लिए डॉ. "मौस" ने कई घटनाओं का जिक्र किया। एक घटना 1908 की है।

ब्रिटेन के हाउस आफ लार्ड के अधिवेशन में विरोधी दल के अविश्वास प्रस्ताव पर एक दिन मतदान होने वाला था। उसमें सत्तारूढ़ दल के एक सदस्य "सर कानरास" गम्भीर रूप से बीमार थे – सदन में उपस्थित होने के योग्य नहीं थे – किन्तु वे सदन में

अपने स्थान पर बैठे और मतदान करते देखे गए जबकि डाक्टरों का कहना था कि वे अपने बिस्तर से हिले भी नहीं। अरविन्द आश्रम की मां बचपन से ही अपना शरीर त्याग कर इधर–उधर विचरण किया करती थी।

परकाया प्रवेश

(एक आत्मा का दूसरे शरीर में प्रवेश)

जीवात्मा अपने स्थूल शरीर को त्याग कर स्वतंत्र रूप से कहीं भी विचरण कर सकती है उसी प्रकार यह किसी जीवित अथवा अन्य मृत शरीर में भी प्रवेश कर सकती है जिसे *(प्रकाया प्रवेश)* कहते हैं। अन्य व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर के अपना नाम भी बताती है तथा शरीर दूसरे नाम से है।

योगियों के लिए यह सामान्य सी बात है। "भागवत" में भी "दस सिद्धियों" का उल्लेख है। उनमें भी प्रकाया प्रवेश का उल्लेख है। *"पतांजलि"* जी ने भी प्रकाया प्रवेश का वर्णन किया है। "हठयोग" में भी ऐसी विधियां हैं – जिससे "प्रकाया प्रवेश" हो सकता है।

"स्वरोदय विज्ञान" के अनुसार "मणिपुर" चक्र में "अग्नि तत्व" स्थित है। इस चक्र पर सदा ध्यान करने वाला प्रकाया प्रवेश की सिद्धि कर सकता है। "निद्रावृत्ति" के विरोध से भी "परकाया प्रवेश" सम्भव है चन्द्रनाड़ी "मनोमय" शरीर की प्राणतत्व वाहिनी नाड़ी है। इसके विरोध से निद्रावृत्ति का निरोध हो जाता है और तब मनोमय शरीर भौतिक शरीर से बाहर आकर अन्य देह में प्रवेश कर सकता है। "पाश्चात्य" में स्वपन नियन्त्रण से भी (प्रकाया प्रवेश) की विधि बताई है। "खेचरी" मुद्रा द्वारा भी सिद्धि होती है।

शंकराचार्य के विषय में विख्यात है कि उन्होंने "मंडनमिश्र" की पत्नी से शास्त्रार्थ में विजय पाने के लिए "राजा सुधन्वा" "अमरूक" के मृत शरीर में प्रवेश कर "काम शास्त्र" का ज्ञान प्राप्त किया था।

भारत में सन 1958 में *"उत्तर प्रदेश"* के *"मुजफ्फरनगर"* जिले के *"रसूलपुर" "जाटान"* गांव में *"जसवीर"* नामक बालक की चेचक से मृत्यु हो गई थी उस समय वह चार वर्ष का था। उसके पिता जी का नाम *"चौधरी गिरधारी सिंह"* था।

उसके बाद शव को रात भर रखा जब दाह संस्कार करने जाने वाले थे तब उस बालक में अचानक चेतना का संचार हुआ और वह जी उठा लेकिन उसमें किसी दूसरी आत्मा ने प्रवेश कर लिया था। उसका व्यवहार बदल गया था। वह आत्मा *"शोभाराम त्यागी"* की थी जिस की आयु 23–24 वर्ष की थी। उसके दो लड़कियां व एक लड़का था। *"शोभाराम"* की मृत्यु उसी रात 11 बजे एक दुर्घटना में हुई थी।

"जसवीर" शोभाराम जैसा ही व्यवहार करने लगा। उसने अपने पड़ोसियों को पहचान लिया। "जसवीर" कहने लगा। मैं ब्राह्मण हूं। तुम लोगों के हाथ का बना खाना नहीं खाँऊगा। मुझे मेरी पत्नी के पास ले चलो उसने अपने भाई पत्नी और मां को पहचान लिया। उन लोगों को उस स्थान पर ले गया यहां दुर्घटना में उस की मृत्यु हुई थी।

मृत्यु का अनुभव

मनुष्य शरीर को ही सब कुछ मानता है और समझता है कि शरीर के नाश होने से जीवन भी नष्ट हो जाएगा लेकिन यह सच्चाई नहीं है। जीवन शरीर का ही नहीं यह जीवात्मा है। इसलिए शरीर के नाश होने से इस का नाश नहीं होता।

मनुष्य योनि में प्रथम जन्म से लेकर मोक्ष पर्यन्त की पूर्ण अवधि इस जीवात्मा का जीवन है। उसकी सम्पूर्ण आयु है। जैसे हर मनुष्य को दिन भर के विश्राम के पश्चात रात्रि को विश्राम की आवश्यकता होती है – जिसे हम "मृत्यु" नहीं कहते – ठीक उसी तरह *"शरीर का एक जीवन" – "जीवात्मा का एक दिन है"* जिसमें थक कर उसे विश्राम की जरूरत है। *"मृत्यु"* इस विश्राम की अवस्था है।

विश्राम काल में जीवात्मा अपनी थकान मिटाती है – जीवन में प्राप्त किए अनुभवों का पाचन करती है।

नई ताजगी के साथ नए जीवन में प्रवेश करती है। शरीर का जीवन उस जीवात्मा के सम्पूर्ण जीवन की एक कड़ी है। शरीर का हर जीवन उस जीवात्मा की एक कक्षा है जिसे उर्तीण कर के उसे अगली कक्षा में जाना होता है। बार--बार शरीर धारण कर उन्नति करता हुआ "मोक्ष" को प्राप्त करता है।

उसके बाद ही "जन्म मृत्यु" से छुटकारा प्राप्त करता है। जो विद्यार्थी पूरी तैयारी कर के परीक्षा में बैठता है वह प्रश्न पत्र को देख कर कभी नहीं घबराता ऐसे ही मृत्यु की पूरी तैयारी करने वाला उससे नहीं घबराता जो मनुष्य अपने जीवन काल में सारे "कर्तव्यों को" पूर्ण कर चुका है – जिसने जीवन का "सदुपयोग" किया है – जिसका जीवन सदा पवित्र रहा है – जिसने सदा दूसरों के *"हित का चिन्तन"* किया है – जो *"राग"*, *"द्वेष"*, *"घृणा"*, *"ईर्ष्या"* आदि की अग्नि में कभी नहीं जला है – उसे मृत्यु का भय नहीं होता और जिस मनुष्य ने जीवन को निर्थक कामों में गंवा दिया है – जिसने अगले जीवन की तैयारी नहीं की वह *"मृत्यु"* से भयभीत होता है।

जीने की *"वासना"* मृत्यु का भय है।

मृत्यु क्या है?

"मृत्यु" इस पृथ्वी की सबसे बड़ी माया (भ्रम) है। सच्चाई तो यह है कि "मृत्यु" है ही नहीं। यह तो जीवन की अवस्था का परिवर्तन है। जीवन का क्रम तो जारी रहता है। *"जीवन को शरीर"* तक सीमित रखना ही *"मृत्यु"* है। जीवन शरीर का नहीं 'जीवात्मा" का है जिस की कभी "मृत्यु" नहीं होती यह "अजर", "अमर", "नित्य", "शाश्वत" है पुरातन है। शरीर के नाश होने से वह नाश नहीं होता।

विज्ञान कहता है – *"क्रोमोजोम्स"* की मृत्यु ही मनुष्य की "मृत्यु"

है। *"क्रोमोजोम्स"* एक अवधि तक ही सक्रिय (Active) रहते हैं लेकिन अध्यात्म कहता है कि मनुष्य एक भौतिक इकाई मात्र नहीं बल्कि एक भौतिक पदार्थ है।

"मृत्यु" के समय शरीर से निकल कर शून्य में चला जाता है और समय पाकर पुनः नया शरीर ग्रहण करता है।

"अध्यात्म" शरीर को मनुष्य नहीं मानता और न ही शरीर की *"मृत्यु"* को मनुष्य की *"मृत्यु"* मानता है। *"शरीर मनुष्य"* का "निवास" ग्रह है जिसे वह मकान की भांति इस्तेमाल करता है। वह *"आत्मा"* तत्व जो शरीर से निकल कर जाता है वही मनुष्य है। जिसे *"जीवात्मा"* कहा जाता है। इसलिए शरीर की *"मृत्यु"* मनुष्य की "मृत्यु" नहीं है। न ही इससे जीवन का अन्त होता है। शरीर की मृत्यु कोई घटना नहीं *"एक प्रक्रिया"* है।

"मृत्यु को सुखद बनाया जा सकता है"

मनुष्य खुद ही अपनी मृत्यु को सुखी भी बना सकता है और दुखी भी। यह उसके चिन्तन पर आधारित है। स्वस्थ चिन्तन तथा हितकारी कार्यों से ही होता है। मृत्यु का कोई भरोसा तो नहीं कब हो जाए। मनुष्य को सदा हितकारी कर्म करने से मन शान्त एवं उद्वेग रहित रहता है। कर्मों का फल अवश्य मिलता है। इसलिए अच्छे कर्म करने वाला कभी *"मृत्यु"* से भयभीत नहीं होता। उसमें एक आत्मविश्वास रहता है और निर्भीक एवं आश्वस्त रहता है।

सदकर्म और सदविचार "मृत्यु" से बचने के लिए बहुत जरूरी है। दोनों का ही भिन्न–भिन्न फल है।

इन दोनों की जीवन में साधना करने वालों को किसी देवी देवता की उपासना – आराधना करने की जरूरत नहीं। यही सबसे बड़ी अराधना। ऐसे नियमों पर चलने से ईश्वर प्रसन्न हो जाते हैं। इनके अभाव से सभी साधनाएं अर्थ हीन है। विवेकशील मनुष्य कर्म एवं

संस्कारों का ही परिष्कार करते हैं। यह जीवन जो प्राप्त हुआ है पूर्व के सैकड़ों जन्मों के शुभाशुभ कर्मों का फल है? उत्तम विचार, रचनात्मक कार्य स्वयं ही उन्नति का कारण बनता है। शरीर अपनी *"भावनाओं" "आकांक्षाओं"* वासना आदि की पूर्ति का साधन ही नहीं बल्कि उच्चतम की ओर बढ़ने का साधन है।

जो सदा दूसरों का अवगुण ढूंढता है या निन्दा ही करता है वह अपना पतन ही कर रहा है। न ही दूसरों के गुणों को ग्रहण करो, अपनाओं और अपने अवगुणों को छोड़ो। जो अपने में सदवृति का विकास करता है वह स्वयं ही अपनी उन्नति का साधन बनता है।

"मृत्यु" का "अनुभव"

"जागरूक" व्यक्ति *"मृत्यु"* की भविष्यवाणी *"मृत्यु"* से पांच छ' महीने पहले कर सकता है। जैसे सोने से पूर्व स्वपन की छाया पड़नी शुरू हो जाती है उसी प्रकार *"मृत्यु"* छाया भी "5–6 महीने" पहले पड़ने लगती है। पांच–छः घंटे या एक दो दिन पूर्व स्पष्ट "संकेत" दिखाई देने लगते हैं जिससे कई व्यक्ति अपनी मौत की सूचना दे देते हैं। जो नित्य सोते या उठते *"प्रार्थना का प्रयोग"* करते हैं या ध्यान करते हैं उन्हें भी अपनी मृत्यु समय पता चल जाता है।

मृत्यु के समय मनुष्य को विशेष अनुभूति होती है। वह घवरा जाता है–वे बेहोश हो जाता है। उसके प्राण इसी वेहोशी में निकलते हैं। जिससे उसको पता नहीं चलता कि मैं मर गया हूं। मेरा, शरीर मुझसे अलग हो गया है। अब मैं जीवात्मा मात्र हूं। जो भयभीत नहीं होता उसे अपने प्राण निकलने का बराबर ध्यान रहता है। जीवन भर में की गई साधना व धैर्य से ही सम्भव है। अन्यथा नहीं। "जवानी में" या "दुर्घटना" से मरने पर उसे अपनी मृत्यु का अनुभव होता है।

"नब्बे" (90) वर्ष के होने पर अनुभव नहीं होगा क्योंकि अनुभव होने वाले यन्त्र पहले ही मर चुके होते हैं। मरे हुए व्यक्ति की "स्मृति

तीन दिन रहती है फिर वह भूल जाता है। कुछ की (तेरह दिन) रहती है।

आत्मा निकलने के बाद शरीर में से ऊर्जा तीन दिन निकलती रहती है। जैसे वृक्ष के काटने के बाद सूखने में दिन लग जाते हैं। ह्रदय की धड़कन बंद होने पर डाक्टर लोग मनुष्य को मृत घोषित करते हैं जिससे (Clinical death) शारीरिक मृत्यु कहा जाता है। परन्तु जब शरीर की सम्पूर्ण ऊर्जा बाहर निकल जाती है तो उसे (बायोलोजिकल) डैथ (जैविक मृत्यु) कहा जाता है। इसमें तीन दिन लग जाते हैं।

"जैविक मृत्यु" से पूर्व यदि विशेष विधियों द्वारा "आत्मा' का शरीर में पुनः प्रवेश करवाया जाए तो वह पुनः जीवित हो सकता है। जैसे पौधा जमीन से उखाड़ देने पर अगर थोड़ी देर के बाद दुबारा लगाया जाये तो फिर जिन्दा हो उठता है।

मृत्यु पर स्थूल शरीर वैसे का वैसा ही रहता है केवल इन्द्रियों का स्वामी जीवात्मा उसमें से निकल कर चला जाता है। उसके बिना इन्द्रियां तथा शरीर प्रकृति समूह मात्र रह जाता है। मृत्यु के समय जीवन का सम्पूर्ण चित्र पूरे विस्तार से मनुष्य के सामने आ जाता है। इसी में इन्सान का जो मुख्य उद्देश्य रहा हो प्रकृति उसी पर जीभ का प्रभाव जम जाता है।

इसी से यह "निश्चित" हो जाता है कि वह किस लोक में रहेगा। इसके बाद इस स्थूल शरीर के भीतर का *छाया शरीर* (ईथर शरीर) का स्थूल शरीर से संबंध टूटता है। मृत्यु के समय जीवन ऊर्जा सिकुड़ कर पहले एक केन्द्र पर एकत्रित होती है फिर बाहर निकलती है। शरीर में प्राण सिकुड़ कर पहले नाभि पर एकत्रित होता है फिर बाहर निकलता है। नाभि जीवन एवं मृत्यु का केन्द्र है। इस समय शरीर में अति पीड़ा होती है परंतु प्रकृति ने व्यवस्था कर रखी है। उस समय मनुष्य बेहोश हो जाता है और पीड़ा का ध्यान नहीं रहता। मृत्यु के समय *"समस्त इन्द्रियाँ"* प्राण तथा अन्तकरण के लिंग में इकट्ठे

हो जाने पर हृदय के अग्रभाग में *"प्रकाश"* हो जाता है। शरीर एक समय तक ही सक्रिय रहता है।

व्यक्ति की *"वासनाएं"* पूरी न होने के कारण वह और जिन्दा रहना चाहता है। ऐसे व्यक्ति को मृत्यु के समय बहुत संघर्ष करना पड़ता है और उसे प्रेत योनी आवश्य भोगनी पड़ती है।

शरीर की आयु निश्चित है लेकिन स्वास्थ्य के नियमों का पालन करके उसे थोड़ा बढ़ाया जा सकता है। *"सामान्यता"* शरीर के व्यर्थ होने पर उसे *"आत्मा"* छोड़ देती है। स्वस्थ आदमी पहली ही बीमारी में मर जाता है परंतु 80 वर्ष तक जीवित रहने वाले के लिए मरना भी मुश्किल हो जाता है। जिस की वासना जितनी तीव्र होगी – भोगने की जितनी अधिक इच्छा होगी उस की उम्र भी लम्बी होगी – कर्म फल भोग शेष रहने पर भी लम्बी उम्र होती है। जिन्दगी भर बीमार रहने वाले का मरना भी मुश्किल होता है।

मृत्यु के समय जो लोग वहां हों उन्हें शान्त–मौन और भक्ति भाव से रहना चाहिए ताकि मरते हुए प्राणी के सामने जो जीवन चित्र आ रहे होते हैं, उनमें किसी किस्म की बाधा या क्षोभ पैदा न हो। रोने, पीटने, शोक करने से उस जीव के ध्यान की एकाग्रता भंग हो जाती है। मरते हुए जीव को जिस शान्ति के द्वारा सुख और सहायता मिले वही करना चाहिए।

इस समय धर्म ग्रन्थों का पाठ या ईश्वर की प्रार्थना आदि से लाभ मिलता है। हिन्दुओं में इस समय गीता सुनाने की प्रथा है। मृत्यु के समय उस के जीवन की सारी फ़िल्म उसके सामने आ जाती है तथा अपना ही चित्त उसे स्पष्ट रूप से जीवन में किए गए सभी अच्छे बुरे कर्मों को स्पष्ट रूप से देखता है जिससे उसे पश्चाताप होता है।

कुछ लोगों को ऐसा अनुभव भी होता है कि काले रंग वाले "विक्राल" "आकृति" डरावने स्वरूप वाले *"यमदूत"* पकड़ कर ले जा रहे हैं और *"यमराज"* के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। *"चित्र गुप्त"*

"यमराज" के सामने उसके अच्छे–बुरे कर्मों का लेखा – जोखा प्रस्तुत करते है। फिर वह जिस लोक का अधिकारी होता है उसे उसी लोक में भेज दिया जाता है। *"थियोसाफी"* ने भी इसे स्वीकार किया है। परन्तु जो संसार को नहीं छोड़ना चाहते उन्हें ही पकड़कर ले जाया जाता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति

.....

मृत्यु के बाद का जीवन

जीवात्मा का शरीर से मोह

जीवात्मा इस शरीर रूपी घर में 70–80 वर्ष रहती है जिसे वह अपना घर समझने लगती है तो उसका उसके प्रति इतना मोह बढ़ जाता है कि उसे छोड़ना नहीं चाहती। मनुष्य मरते समय बहुत घबराता है। उसके प्राण किसी मोह में फंसे होने के कारण शरीर को छोड़ते नहीं। जिसका जितना मोह अधिक होता है उसको शरीर छोड़ते इतनी ही वेदना अधिक होती है।

शरीर व्यर्थ हो चुका होता परन्तु "जीवात्मा" उसे छोड़ना नहीं चाहती उस समय उसको काफी समय तक *"जीवन और मृत्यु"* के बीच संघर्ष करना पड़ता है। यह हमारे जीवन में अक्सर होता है घर वाले सभी *"परिजनों"* को बुला लेते हैं जिससे उनसे मिलने की इच्छा शान्त हो जाए। मोह को भंग करने के लिए उसे गीता सुनाई जाती है। उसके सामने गऊदान, एकादशीव्रत करना, गायों को घास डालना, दान, पुण्य आदि का संकल्प भी किया जाता है। अक्सर देखा गया है ऐसा करने से जीवात्मा फौरन शरीर छोड़ देती है।

जीवात्मा का अस्तित्व स्वतंत्र है जो शरीर की मृत्यु के बाद भी उससे अलग होकर जीवित रहता है। अपने स्थूल शरीर के पास खड़े होकर ऐसे देखता रहता है जैसे किसी के शरीर को देख रहा है।

काफी समय तक तो उसे विश्वास नहीं होता कि वह मर गया है। उसे अपनी मृत्यु का विश्वास दिलाने के लिए शव को दाह संस्कार के लिए जब उठाते हैं तो उसके परिवारजन रोना–धोना करते हैं। जीवात्मा कभी शरीर के प्रति *"मोहवश शमशान"* तक जाता है तथा अपने ही शरीर को जलते हुए देखता है तो उसे विश्वास हो जाता है कि वह मर गया है। इसके बाद वह अपनी अगली यात्रा पर निकल जाता है।

दाह संस्कार

हिन्दुओं में मृत शरीर का दाह संस्कार करने की प्रथा है। उस समय सभी परिजन एवं संबंधी शामिल होते हैं। इसे एक धार्मिक कृत्य माना जाता है। सभी के सामने परिवारजन संबंधी शव को चिता में रखते हैं। फिर बड़ा बेटा यानी की (ज्येष्ठ पुत्र) अग्नि देता है ज्येष्ठ पुत्र अन्त *"कपाल क्रिया"* भी करता है।

इसका अर्थ जब शरीर के सब अंग जल जाते हैं तो भी *"मस्तिष्क"* में चेतना रह जाती है उससे *"मुक्ति"* दिलाना है। दूसरा कारण है कि *"स्थूल शरीर"* के मृत होने पर भी उसके भतीर (छाया शरीर) (दूथरिक) (बाडी) उसके आस–पास मंडराता है तथा "36" घण्टे के भीतर यह *"जीवात्मा"* उसको भी *"मृतवत"* छोड़कर उससे निकल जाती है। *"दाह संस्कार"* करने पर यह उसी के साथ नष्ट हो जाता है।

यदि मुर्दे को गाड़ दिया जाये तो वह उस कब्र के ऊपर मंडराता हुआ धीरे–धीरे नष्ट होता है। *'स्थूल शरीर"* के प्रति जो उसका मोह था वह समाप्त हो जाता है। इसलिए मुर्दे को गाड़ने की अपेक्षा उसका दाह संस्कार करना अधिक बेहतर समझा गया है। संरकार के पीछे हिन्दुओं की यही धारणा है। दूसरी सवस से बड़ी बात यह हैं। कि *"हिन्दू" "आत्मा"* को ही महत्व देते हैं। शरीर का महत्व

तभी तक है जब तक उसमें आत्मा है।

"आत्मा" निकल जाने पर शरीर मिट्टी के समान है परंतु आत्मा का उससे मोह रह जाने के कारण ही उसका विधिवत दाह संस्कार किया जाता है उसको मिट्टी मान कर फैंका नहीं जाता। इसमें जल्दी भी की जाती है जिससे जीवात्मा को अधिक समय तक उस शरीर के आस–पास भटकना न पड़े और अपनी *"असली यात्रा"* आरम्भ कर दें। इसी लिए (तीसरे दिन) उसकी अस्थियां भी (गंगा या पवित्र नदी में) प्रवाहित कर दी जाती हैं।

जीवात्मा का घर में निवास

जीवात्मा का स्थूल तथा छाया शरीर के नष्ट होने पर भी अपने घर तथा परिवार के लोगों से मोह बना रहता है जिसे छोड़ने में थोड़ा समय लगता है। सामान्य आत्माएं, मृत्यु के बाद शीघ्र ही गर्भ खोज लेती है परंतु कुछ को तीन दिन, तैरह दिन, एक वर्ष या तैरह वर्ष तक इन्तजार करना पड़ता है।

कुछ आत्माओं को इससे भी ज्यादा इन्तजार करना पड़ता है। हिन्दुओं की मान्यता है कि 13 दिन तक आत्मा घर में ही रहती है। इसके बाद वह प्रेत योनि में रहती है। इस प्रेत योनि से उसकी मुक्ति के लिए तैरह दिन के बाद भी कई प्रकार के किरया कर्म किए जाते हैं। फिर वह प्रेत योनि से मुक्ति पाकर आगे की यात्रा में निकल जाती है।

तेरह दिन तक उस जीवात्मा का घर में निवास मान कर उसके लिए बारह दिन तक शोक मानते हैं। गरूड पुराण सुना कर उसे उस अशरीरी दुनिया की सूचना दी जाती है। जिससे अपरिचित हैं *"जीवात्मा"* के प्रतीक के रूप में उसके कमरे में जल से भरा हुआ *"कलश"* भी रखते हैं। जिसे *"आत्मा का कलश"* कहते हैं तथा उसके घर में घी का दीपक जलाते हैं इसे डोगरी भाषा में तराड़ी कहते हैं। उस सूक्ष्म शरीर धारी जीवात्मा को तेज प्रकाश असह्य

होता है। दसवें–ग्याहरवें एवं बारहवें दिन उसका किरयाकर्म एवं पिण्डदान भी किया जाता है। उससे जीवात्मा तृप्त होती है।

तेरहवें दिन उस जीवात्मा को विदाई दी जाती है। उस समय उस *"श्रावणी कलश"* को किसी पीपल के पेड़ के नीचे रख देते हैं। आते समय पीछे मुड़ कर नहीं देखते नहीं तो जीवात्मा उसके साथ घर आ जाती है। जीवात्मा को पीपल के पास जा कर इस लिए छोडते हैं क्योंकि पीपल में देवताओं का निवास मानते हैं और आत्मा का प्रेत योनि में जाने का डर नहीं रहता।

उसी दिन गरूड़ पुराण की भी समाप्ति कर दी जाती है। उसी दिन *"उत्तराधिकार"* की रस्म भी अदा की जाती है जिसे *"रस्म पगड़ी"* कहते हैं। 12 दिन तक *"जीवात्मा"* का घर में निवास मान कर उत्तरधिकारी नहीं बनाया जाता।

जीवात्मा का सूक्ष्म लोक में प्रवेश

"जीवात्मा" जैसे ही अपना *"स्थूल"* शरीर छोड़ता है उसका नए लोक में प्रवेश हो जाता है। यह लोक *"स्थूल"* लोक से *"सूक्ष्म"* है। *"जीवात्मा"* अपने *"सूक्ष्म शरीर"* से ही इसमें *"प्रवेश करती"* है। इस लोक का उसे पहले अनुभव नहीं होता न ही इस की प्रकृति से वाकिफ होता है। *"स्थूल लोक"* से भी इस लोक का विस्तार अधिक है। वहां *"जीवात्मा"* का केवल भौतिक शरीर ही नहीं होता न कोई भौतिक साधन सुविधाएं ही होती है – बाकी सब कुछ होता है।

यहां जीवात्मा को उसके सगे–संबंधी, मित्र आदि सभी मिल जाते हैं यदि उनका पुर्नजन्म नहीं हुआ है एवं आगे के लोकों में गति नहीं हुई है। इस लोक में उसे थोड़ी देर तक स्मृति रहती है फिर भूल जाता हैं। जैसे मनुष्य स्वपन टूटने पर भूल जाता है।

मृत्यु स्वपन टूटने के समान ही है इसके बाद यह संसार स्वपन मात्र ही दिखाई देता है। नए लोक में प्रवेश के बाद वह इस संसार

की सुखद एवं दुखद अनुभूतियों से मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार घर छोड कर विदेश जाने वाले को घर की याद सताती है नए वातावरण में जमने में (Adjust) होने में थोड़ा समय लगता है उसी प्रकार मृत्यु के बाद नए वातावरण में जमने में उसे थोड़ी कठिनाई होती है।

अगर पीछे घर का उसका मोह छुड़ा दिया जाये तो वह अपने नए स्थान में शीघ्र ही *"सामाजस्य"* बिठा लेता है। इस मोह से छुड़ाने के लिए भारत ने कई प्रयोग किए हैं तथा पूरे का पूरा मृत्यु शास्त्र विकसित किया है। *"तिब्बत"* में भी इसके कई प्रयोग किए गए हैं।

मृत्यु के समय यह *"जीवात्मा स्थूल शरीर सहित" "समस्त" "स्थूल लोक"* तथा *"स्थूल पदार्थों"* का त्याग कर देता है। केवल इस जन्म में किए गए सभी शुभाशुभ *"कर्मों के संस्कार", "स्मृतियां", "अनुभव"* की *"गठरी बांध"* कर अपने साथ ले जाता है। इन्हीं से *"जीवात्मा"* का सूक्ष्म शरीर बनता है।

इस "जीवात्मा" के एक नहीं बल्कि *"सात शरीर"* है जिसका निर्माण उसकी घनता के आधार पर हुआ है। स्थूल जो शरीर छूटा है वह सबसे स्थूल था। छः शरीर अभी भी विद्यामान है। *"जीवात्मा"* द्वारा की गई *"प्रगति"* (उन्नति) के अनुसार यह (छः शरीर) भी क्रम से अपने–अपने समय पर छूटते जाते हैं जैसे–जैसे घनत्व वाले शरीर छूटते जाते है त्यों–त्यों जीवात्मा हल्की होकर आगे के लोको मे धर करती जाती है। सातों शरीर नष्ट होने पर ही मुक्त होकर परमात्मा में लय होने का अनुभव करती है। आनन्द महसूस करती है। हर एक शरीर का छूटना उसकी उन्नति का सूचक है। बंधनों से मुक्त हो जाती है।

कुछ व्यक्ति, महापुरुष, साधना के प्रभाव से इसी जन्म में सातों शरीरों को नष्ट कर देते हैं। (योग के सातों चक्रों) को बेध लेते हैं। वह मृत्यु के बाद सीधे मुक्ति को पाते हैं। उनको किसी लोक में "गमन" (यात्रा) नहीं करनी पड़ती। ऐसे व्यक्ति जीवन मुक्त कहलाते

हैं। जीवात्मा का यह सूक्ष्म शरीर मुक्ति पर्यन्त बना रहता है।

सूक्ष्म शरीर के छूट जाने पर नया शरीर ग्रहण नहीं हो सकता। सूक्ष्म शरीर ही पुर्नजन्म ग्रहण करता है। मृत्यु के बाद जीवात्मा सबसे पहले *"काम लोक"* में प्रवेश करती है या उसे (प्रेत लोक) कहते हैं। यह स्थूल लोक से कम (घना) होता है परंतु दूसरे लोकों से अधिक घना होता है। जिन जीवात्माओं पर अशुभ कर्म संस्कारों का भार अधिक है उनका का घनत्व अधिक होने से ये इसी लोक में रुक जाती है। उत्तम जीवात्माएं हल्की होने से वे शीघ्र ही इसे छोड़कर आगे इससे *"सूक्ष्म"* लोकों में चली जाती है।

जीवात्मा के सात शरीरों की गति उनके अनुकूल लोकों में होती है। प्रेत लोक में जीवात्मा को अपने कर्मों के अनुसार *"सुख–दुख"* की अनुभूति होती है। इस लोक में जीवात्मा कष्ट झेल कर दुख भोगती है फिर आगे वाले लोक में प्रवेश लेती है जब बिल्कुल शुद्ध होकर मुक्त होती है। यह इससे अधिक सूक्ष्म है। (प्रेतात्मा) का *"लिंग"* शरीर भी सात परतों वाला होता है जिसमें यह प्रेत बन्द रहता है।

इनके नष्ट हुए बिना उसकी इस लोक से मुक्ति नहीं मिलती। हर एक परत में वह थोड़ा समय जरूर रहता है। फिर उसे छोड़ कर मुक्ति की ओर बढ़ता है। साधारण जीव अपनी–अपनी प्रकृति अनुसार पांच से पचास वर्षों तक रहता है। जिनकी आत्मोन्नति हो गई है – उनकी यह परतें जल्द नष्ट हो जाती हे और आगे के लोक में प्रवेश हो जाता है। जो अपना उपयुक्त आहार–विहार से अपना जीवन शुद्ध रखता है जिसकी वासना मंद रहती है वह शीघ्र ही *"स्वर्ग लोक"* पहुंच जाता है। बीच के लोकों का उसको ज्ञान भी नहीं रहता। जिसकी वृतियां *"पाशविक"* रही है वह इस प्रेत लोक के अनुकूल खण्ड में ही जायेंगे।

आकाल मृत्यु, कत्ल, आत्महत्या, दुर्घटना, युद्ध में मरने वालों

के लिए अलग नियम हैं। अगर वह जीव *"शुद्ध"* है। अगर *"लोकहित"* में अपने प्राणों का उत्सर्ग किया है, बलिदान दिया है तो उनकी विशेष रक्षा होती है। उनकी जितनी उम्र बाकी रही है उतना समय वे आनन्द दायक निद्रा में रहते हैं किन्तु अन्य लोगों को होश बना रहता है।बहुतों को मरते समय की बातों का भी स्मरण नहीं होता वह कामलोक की गहरी परत में ही रहते हैं। आयु समाप्त होने पर वह काम लोक में जाते हैं। वे उस मृत्यु की पीड़ा का बार–बार अनुभव करते हैं ऐसी मृत्यु किसी बुरे प्रारब्ध वश ही होती है।

जीव की सभी आशा राग, द्वेष, तृष्णा उसमें रहते हैं। इसी से वह दूसरों को देखता भी है तथा उनके कार्यों में हस्तक्षेप करता है। सहायक उन्हें आगे जाने में सहायता करते हैं परंतु इन प्रेतों की समझ में नहीं आता। यह प्रेत दूसरों के शरीर अपने वश में करके नए कर्म करते रहते हैं जिन का फल भविष्य में भोगना पड़ता है। (अकाल मृत्यु) बुरी समझी जाती है। जब यह जीव पुनः जन्म लेता है तो ये ही वृतियाँ बीज रूप में विद्यामान रहती है। इस प्रकृति के कोश के नाश होने पर ही उसकी आगे के लोक में गति होती है।

हिन्दुओं में जीवात्मा की इस (प्रेत योनि) से (मुक्ति) के लिए अनेक कर्म किए जाते हैं जिनमें *(वार्षिक श्राद्ध) "गया श्राद्ध"* आदि हैं तथा अन्तिम श्राद्ध *"बद्रीनाथ"* में किया जाता है। इसके बाद यह माना जाता है कि वह जीवात्मा *"प्रेत योनि"* से मुक्त होकर अगले लोक में चली गई है तथा इसका पुर्नजन्म हो गया है।

ऐसा देखा भी गया है कि जिस के यह "श्राद्ध" कर दिए जाते हैं वह जीवात्मा किसी घर वाले को नहीं सताती। प्रेतयोनि थोडी बहुत सब को भुगतनी पड़ती है। केवल (जीवमुक्त) ही इससे वांचित रहते हैं। जीवात्मा का अपना अस्तित्व स्वतंत्र है। शरीर की मृत्यु पर भी जीवात्मा स्वतंत्र रहती है। जो लोग मृत्यु से लौटे हैं उन्हीं के अनुसार डाक्टरों ने उसका निष्कर्ष इस प्रकार निकाला है।

1) मृत्यु के बाद (मृतक) मरा हुआ मनुष्य स्वयं अपने भौतिक शरीर से अलग हवा में उठा हुआ पाता है। वह अपने सगे–संबंधियों को रोते बिलकते, शोक मनाते, कल्पते स्पष्ट देखता है। वह उनकी आवाजें भी सुनता है – लेकिन उसकी आवाज कोई नहीं सुनता। वह अपने पार्थिव शरीर की अन्त्येष्टि होते भी देखता है।

आखिरकार उसे एक अंधेरी गुफा में जाने की अनुभूति होती है। बाद में वह अपने आप को *"प्रकाश"* लोक में पाता है। यहां उसके मित्र–परिवार की सभी दिवंगत आत्माएं उससे मिलती हैं और उसकी सहायता करती हैं इस दिव्य लोक में उसे असीम आनन्द, प्रेम तथा सुख की प्राप्ति होती है फिर वह इस भौतिक स्थूल शरीर में आना नहीं चाहता। लेकिन अज्ञात प्रेरणा से उसे आना पडता है। ऐसे सैंकड़ों उदाहरण है जिससे यह सिद्ध होता है कि मृत्यु के बाद भी हमारी *"सूक्षम सत्ता"* विद्यमान रहती है और पुर्नजन्म के समय यही भौतिक शरीर में प्रवेश करती हैं।

पुर्नजन्म की कई घटनाएं हैं जिसमें आत्माएं अपने पूर्व जन्म का हाल बताती हैं। वह अपने मित्रों, रिश्तेदारों को पहचान लेती हैं। इन सबसे अर्थ यही है कि मृत्यु शरीर की है आत्मा की नहीं। *"सम्मोहन"* क्रिया द्वारा भी व्यक्ति को अपने पूर्व जन्मों में प्रवेश कराकर इस चेतना का हाल जाना जाता है।

ऊँ शान्ति, शान्ति, शान्ति

यह सब कुछ मैं अपने साथ घटित घटना जिसे हमारे लोगों (प्रयाग जाना कहते हैं) के आधार पर एवं शास्त्र अध्ययन के आधार पर लिख रहा हूं। 1967 में मेरी एक छोटी सी भजनों की पुस्तक *'माता दिया भेटां"* छाया हुई थी उसमें (प्रयागराज) की पूरी History दी गई थी। यह घटना कैसे–कैसे हुई। अब मैं इस पुस्तक को उसी आधार पर लिख रहा हूं।

भटकती आत्माएं

मृत्यु के बाद और पुर्नजन्म से पहले जीवात्मा को एक लम्बे समय तक *"शून्य"* अशरीरी रूप में भटकना ही पड़ता है। इस अवधि (Period) को *"अन्तराल समय"* (Dream Period) कहते हैं। यह अवधि हर जीवात्मा की भिन्न होती है। तीन दिन या तेरह दिन भी हो सकती है या सैंकड़ों वर्ष भी हो सकती है। *"अन्तराल"* (Dream Period) कुछ का "पुर्नजन्म" उसी समय हो जाता है। नया गर्भ *"जीवात्मा"* की इच्छा पर नहीं बल्कि अपने संस्कारों एवं कामना के अनुसार अपने आप मिलता है। इसका ज्यादातर निर्णय वासना की तीव्रता पर है। अन्तराल में तीन प्रकार की जीवात्माएं रहती है। *"उत्कृष्ट" "सामान्य"* एवं "निकृष्ट"।

(उत्कृष्ट आत्माओं को देवता) तथा *(निकृष्ट आत्माओं)* को प्रेतात्मा कहते हैं। हिन्दु धर्म ने इसे भी योनि माना है। सामान्य आत्माएं अपने कर्मों के अनुसार शीघ्र ही जन्म ग्रहण कर लेती है। लेकिन *"देवात्मा"* और प्रेतात्मा को अपने अनुसार गर्भ न मिलने से लम्बे समय तक *"प्रतीक्षा"* करनी पड़ती है। देवात्मा का जन्म आवश्यकतानुसार ही होता है।

मनुष्य जैसा अनुभव इस संसार से लेकर जाता है उसका वैसा ही अनुभव अन्तराल में होता है। हम यूं कह सकते हैं कि यह समय उसका प्रायश्चित का समय है। *(देवात्मा)* सुख शान्ति का अनुभव करती है – जिसे हम (स्वर्ग) कहते हैं। प्रेतात्मा को वासना में ग्रस्त रहने के कारण दुःख तकलीफें सहन करनी पड़ती हैं। वहां इनकी तृप्ति का कोई साधन नहीं होता। वासना की तृप्ति तो भौतिक शरीर से ही होती है जो उस के पास नहीं होता। इसी से उसे पीड़ा का अनुभव होता है। प्रेतात्माएं वहां दुःख, घृणा, पश्चाताप, द्वेष, ईर्ष्या में जलती रहती है। यह स्वर्ग, नर्क की अनुभूति उसे अपने ही मानस

द्वारा होती है।

"अन्तराल" में यह जीवात्माएं न स्थिर होती है न गतिशील वहां स्थान और समय ही नहीं होता। ये आत्माएं शरीर न होने से न खा सकती हैं न बोल सकती है। सूंघना, छूना, अंधेरे व प्रकाश का अनुभव भी उन्हें नहीं होता। अन्तराल में जीवात्मा का मन, चित्त अंहकार होता है जिसमें सभी जन्मों के संस्कार बीज रूप में रहते हैं। जैसे कार चलाने का अनुभव कार न होते हुए भी विद्यमान रहता है – ये आत्माएं केवल सुन सकती हैं न देख सकती है। – ये *"सुनसान"* जगह पर रहना पसंद करती है एक क्षण में यह अपने क्षेत्र में कहीं भी पहुंच सकती है। ऐसी कई जीवात्माएं हमारे चारों और विद्यमान हैं कई बहुत दूर चली जाती हैं।

जीवात्माओं को खाने–पीने बदला लेने – काम वासनाएं बहुत तीव्र होती हैं। कई दफा वे दूसरे के शरीर में प्रवेश कर के काम वासना पूरी कर लेती है। उपयुक्त अवसर पर चोरी भी करती हैं।

अन्तराल में जीवात्माएं अच्छे–बुरे कर्म नहीं कर सकती जिससे इनका विकास या पतन नहीं होता। अपने विकास के लिए उसे पुनः जन्म लेना पड़ता है। *"देव"* योनि भी भोग योनि है। वहां से वह *'मोक्ष'* में नहीं जा सकती, मुक्ति लाभ मनुष्य जीवन ही सुअवसर है। जीवात्माओं का *"सूक्ष्म"* शरीर ही होता है जो मोक्ष पर्यन्त बना रहता है। *"सूक्ष्म"* मन से अधिक प्रभावित होता है। सूक्ष्म शरीर तीन स्थानों पर एक साथ दिखाई दे सकता है।

जीवात्माओं से सम्पर्क

भटकती हुई आत्माओं से सम्पर्क किया जा सकता है। जीवात्माएं *"स्थूल"* व्यक्तियों से सम्पर्क करने की सदा इच्छुक रहती हैं। आज दुनिया में कई ऐसे संगठन है जो इन जीवात्माओं से निरन्तर सम्पर्क करते रहते हैं। उनके उस लोक की जानकारी लेते रहते हैं। लोक

कल्याण के लिए जीवात्माएं भी अपने ज्ञान को देना चाहती हैं। माध्यम ढूंढती रहती हैं। उपयुक्त गर्भ मिलने पर स्वयं शरीर धारण कर ज्ञान देती है या किसी के शरीर में प्रवेश कर उसके माध्यम से सम्पादित करती है।

दूसरा तरीका "माध्यम" का। जीवात्मा से प्रत्यक्ष बातचीत के लिए किसी माध्यम को तैयार किया जाता है जिससे सारी जानकारी एकत्रित की जाती है। *"देव"* या *"प्रेत"* अपने अनुकूल प्रकृति वाले शरीर में प्रविष्ठ होती है। सामान्यतया देवात्मा अपने ही रक्त वाले मनुष्यों के शरीर में प्रवेश लेती है। *"उत्कृष्ट"* आत्माओं को बुलाने के लिए माध्यम को उसके अनुकूल बनाना पड़ता है।

"दिव्य" आत्माओं के लिए *"दिव्य"* एवं सशक्त शरीर आवश्यक है। जो शरीर हमें मिला है उसका स्नायु संस्थान (Nervous system) एक ही आत्मा की ऊर्जा झेलने के लिए सक्षम है। यदि दूसरी आत्मा उसमें प्रवेश लेती है तो यह *"स्नायुमण्डल"* उसकी *"अतिरिक्त"* शक्ति को सहन नहीं कर सकता जिससे व्यक्ति बड़ी बेचैनी महसूस करता है। अनायास शक्ति के आगमन से समस्तर स्नायुमंडल झंकृत हो जाता है जिससे पागलपन जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है -- मनुष्य डर जाता है उसकी मृत्यु भी हो सकती है। इसके अलावा शक्ति को सहन करने के लिए विभिन्न साधनाओं द्वारा स्नायुमंडल को सशक्त किया जाता है। पात्र तैयार होने पर वह *"जीवात्मा"* स्वयं आने की इच्छुक रहती है।

प्रेतों का आह्वान करने वाले शमशान को जगाते हैं मन्त्र सिद्ध करते हैं और अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबंध करते हैं। यह एक खतरनाक खेल है। *"आदिवासियों"* में कई ऐसी विधियां जिससे *"दुष्ट आत्माएं"* प्रेत आदि को पालती है और इच्छित कार्य करवाते हैं। जब किसी अन्य आत्मा के शरीर में प्रवेश होता है तो स्वयं की जीवात्मा सिकुड़ जाती है। बाहरी आत्मा का उस पर कब्जा हो जाता है।

ऐसी अवस्था में आवाज बदल जाती है। उसके हाव भाव बदल जाते हैं – उस की शैली भी बदल जाती है। वह अपने को अन्य व्यक्ति बताने लगता है। बार–बार ऐसी आत्माओं को बुलाने पर अभयस्त हो जाता है जिससे बेचैनी का अनुभव नहीं होता। प्रेतात्मा के आगमन पर वह भयभीत होकर मुर्छित भी हो जाता है।

मन्त्रों द्वारा आह्वान करना

मनुष्य ध्यान या प्रार्थना द्वारा अथवा विशेष प्रकार के मन्त्रों द्वारा भी इन जीवात्माओं का आह्वान करता है। ऐसे वह किसी के शरीर में प्रविष्ठ होती है। ध्यान एवं प्रार्थना में व्यक्ति अंहकार रहित होता है। देवताओं के आह्वान का पूरा विज्ञान है। इनके लिए विशेष धूप, दीप, नवेध आदि रख कर विशेष प्रकार के मन्त्रों द्वारा आह्वान किया जाता है। मन्त्र इसका सशक्त माध्यम है। हिन्दुओं ने इस मन्त्र शक्ति पर विशेष कार्य किया है। (प्रेतों) के आह्वान के लिए मुस्लिम धर्म के मन्त्र काफी कारगर सिद्ध हुए हैं। हर आत्मा विशेष मन्त्रों के द्वारा ही प्रविष्ठ होती है।

मन्त्र पूर्ण वैज्ञानिक विधि से निर्मित किए गए हैं। इन्हे सिद्ध भी किया जाता है तभी यह उपयोगी सिद्ध होते हैं। इन मन्त्रों में *"ध्वनि"* का आह्वान में विशेष महत्व है। मन्त्रों के कई और भी उपयोग है। यह मन्त्र शरीर व अन्तराल की जीवात्माओं के बीच सबध स्थापित करने का सशक्त माध्यम है। *"देवात्मा तथा प्रेतात्मा"* के लिए भिन्न–भिन्न मन्त्र है। आह्वान पर यदि *"देवात्मा एवं प्रेतात्मा"* प्रसन्न होकर आती है। तो वरदान सिद्ध होती है परंतु अगर अप्रसन्न होकर आती है तो *"सर्वनाश"* कर देती है।

यह आत्माएं अपने मान सम्मान की अधिक इच्छुक रहती हैं। प्रेतात्माएं आते ही खाने की मांग करती है और जो कुछ मांगे तत्काल देना पड़ता है। देवात्मा के प्रवेश के बाद वह मनुष्य अनुभव करता है कि मेरे भीतर कोई बोल रहा है। *"मोहम्मद साहब"* को भी ऐसा ही

अनुभव हुआ कि मेरे भीतर कोई दूसरा बोल रहा है। वह पढ़े–लिखे न थे। किसी "दिव्य" आत्मा ने प्रवेश कर के उनसे *"कुरान"* लिखवाई *"हजरत मूसा"* और *"विवेकानन्द"* आदि को भी ऐसा ही अनुभव हुआ। जीवात्माएं अपने लोकों की सूचना भी देती हैं वह वहां कैसे रहते हैं। जिससे मनुष्य को जानकारी मिलती है।

ध्यान द्वारा ज्ञान

ध्यान के द्वारा भी परलोक की आत्माओं से सम्पर्क हो सकता है। ध्यान में जब मन की गतियां शान्त हो जाती हैं उस समय भीतरी चेतना अपने पूरे ज्ञान के साथ प्रकट होती है – उस समय उसका अंहकार नष्ट हो जाता है।

उस समय उसमें अतीन्द्रिय क्षमता एवं ज्ञान प्राप्त हो जाता है। ऐसे ज्ञान को ही "अयोरुषेय" कहा जाता है यह स्वयं का नहीं होता। ऐसी स्थिति की प्राप्ति गहरे ध्यान से होती है अतीन्द्रिय शक्ति से वह महानतम कार्य करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। इससे उच्च कोटि का ज्ञान प्रकट होता है। दुनिया के महानतम ग्रन्थ ऐसे ही प्रकट हुए ज्ञान के आधार बनते है। यही ज्ञान *"ईश्वरीय"* ज्ञान कहलाता है जो व्यक्ति के माध्यम से ही उतरता है। इसी को इश्वरीय कृपा, इश्वरीय ज्ञान, अतीन्द्रिय ज्ञान कहा जाता है।

जीवात्माएं सहायता भी करती हैं

"अन्तराल" की जीवात्माएं पृथ्वी लोक के वासियों की कई प्रकार से सहायता करती हैं। मनुष्य जो अच्छे–बुरे कर्म करता है उसके पीछे इन आत्माओं का भी हाथ होता है। अकेला कोई भी *"श्रेष्ठ"* या *"निकृष्ट"* कर्म नहीं कर सकता क्योंकि उसकी शक्ति एवं ज्ञान सीमित है।

1965 में भारत और पाकिस्तान में युद्ध के समय सैनिक टुकड़ी (जम्मू–कश्मीर) पहाड़ियों में रात को रास्ता भूल गई थी। उसे आगे

वाली चौकी (Post) पर पहुंचना था। उस समय एक (लेफ्टीनेंट) की आत्मा ने उनको रास्ता बताया जो एक ही दिन पहले पीठ पर गोली लगने के कारण मर गया था। उस का दाह संरकार भी कर दिया गया था। ऐसा उसने खुद ही बताया। चौकी पर पहुंच कर वह गायब हो गया। यह उसका सूक्ष्म शरीर ही था। उसकी पीठ पर गोली का निशान था। (स्थूल) शरीर के घाव सूक्ष्म शरीर पर रहते हैं। जैसे (जीसस) पुर्नजीवित हुए तो उनके हाथों पर कीलों के निशान थे। यह उनका सूक्ष्म शरीर था।

उच्चकोटि के कलाकरों, संगीतज्ञों, कवियों, लेखकों, धार्मिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तियों, डाक्टरों, इंजीनियरों, सैनिकों, मेकेनिकों, मोटर ड्राइवरों, ज्योतिषियों, वैज्ञानिकों, धार्मिक शिक्षकों, भवन निर्माताओं, मूर्तिकारों आदि विशिष्ट व्यक्तियों की ये जीवात्माएं सदा सहायता करती रहती हैं जिससे इनके कार्यों में श्रेष्ठता आती है। किसी उलझन में फंसने पर यह प्रत्यक्ष रूप से सहायता के लिए आती हैं। कई जीवात्माएं आप्रेशन भी करती हैं। गणित की समस्याओं का हल करती हैं लेकिन किसी का लक्ष्य हो इनके द्वारा भ्रष्ट पैसा कमाना तो यह सहायता नहीं करती हैं।

ऐसे ही दुनिया के महानतम सेवा संगठनों को भी यह आत्माएं सदा *"संरक्षण"* एवं सहायता प्रदान करती रहतीं हैं जिससे निर्विघ्न गति से कुशलतापूर्वक कार्यरत रहते हैं। जैसे रैडक्रॉस, विभिन्न सेवा संगठन, थियासॉफी एवं अन्य धार्मिक संगठनों का इनका संरक्षण प्राप्त होता है। इसी तरह (निकृष्ट) एवं दुष्ट प्रकृति के लोगों को भी उसी प्रकार की दुष्ट आत्माएं सहायता करती हैं जिससे वह अधिक दुष्ट कर्म करने में कुशलता प्राप्त कर लेते हैं। जैसे चोरों, जेबकतरों, हत्यारों, आत्तायियों, रिश्वतखोरों आदि को निकृष्ट आत्माएं सदा सहायता करती है।

अरविन्द की मां ने अपने गुह्य अनुभव के आधार पर लिखा है कि

हिटलर के आसपास सदा एक असुर सत्त विद्यमान रहती थी जो प्रकट होकर नृशंस कार्यों में उसकी सहायता व प्रेरणा दिया करती थी। यह सत्त 1916 में उसके सम्पर्क में आई। हिटलर का अन्त भी इसी सत्त ने किया। नेपोलियन के पास भी ऐसी सत्त मंडराती थी जो हमेशा उससे क्रूर कर्म करवाती रही, अन्त में वही उसकी मृत्यु का कारण बनी 14वीं सदी में (रोम का शासक) नीरो भी ऐसी ही सत्ता के चंगुल में फंसकर क्रूर कर्म करता रहा।

यह "आसुरी शक्तियां" व्यक्ति के चिन्तन प्रवाह के अनुसार ही आकर्षित होती हैं। शुभचिन्तन, उच्च विचार, श्रेष्ठ विचार, वालों की ओर श्रेष्ठ आत्माएं ही आकर्षित होती है।

जीवात्मा का विकास

सूक्ष्म के स्थूल जगत

परब्रह्म इस सृष्टि का सबसे से सूक्ष्म तत्व है। जो समय के साथ स्थूलता को प्राप्त होकर इस जड़ चेतनमय स्थूल सृष्टि की रचना करता है। इसके सात शरीर हैं कहां तक। सूक्ष्म से लेकर स्थूल जगत तक। यह प्रकृति के ही *"आवरण"* हैं (पर्दे)। इनके पार ब्रह्म की सत्ता है। यह सात शरीर जड़ और चेतन दोनों में बराबर विद्यमान हैं लेकिन जड़ में यह *"सुप्तावस्था"* में रहते हैं। इनके विकास की सम्भावना नहीं है जबकि वनस्पति, पशु पक्षी व मनुष्य में क्रमशः अधिक विकसित होते हैं। मनुष्य में कुछ शरीर स्वाभविक रूप से पुर्नजन्म के संस्कारों के कारण उम्र के साथ अपने आप विकसित होते जाते हैं। परंतु कुछ को साधना, श्रम, पुरुषार्थ, संकल्प आदि के द्वारा विकसित करना पड़ता है। जिसके सभी शरीर विकसित हो जाते हैं वही अन्त में परमात्मा का अनुभव करता है। जिसने सातों शरीरों का विकास इसी जन्म में कर लिया है वह जीवन मुक्त होकर सीधा *"परब्रह्म"* में विलीन हो जाता है। जिसका अहंकार नष्ट नहीं हुआ है

वह ब्रह्मलोक में रहकर उसके भोगों को भोगता हुआ कल्पांत (ब्रह्म) में विलीन हो जाता है। इन दोनों का पुर्नजन्म नहीं होता।

ब्रह्म लोक में *"जीवात्मा"* व परमातमा की भिन्नता बनी रहती है। वहां वह अपने कारण शरीर से ही पहुंचता है। *"वह जीवात्मा की अन्तिम"* स्थिति है। (ब्रह्म) में लीन होना उसकी अन्तिम गति है। इसी को परमधाम, मोक्ष, सायुज्य, मुक्ति आदि कहा जाता है। इसलिए यह शरीर एक घर है जिसके सातवें परकोटे में परमात्मा का निवास है। इस घर का मालिक वहीं परमात्मा है। अन्तिम स्थिति प्राप्त होने तक जीवात्मा स्थूल शरीर को हर जन्म में बदलती रहती है। नये जन्म से नए अनुभव लेकर क्रमिक विकास करती है।

ब्रह्म जो सूक्ष्म है शरीर स्थिर आत्मा उसी का अंश है। वह दिखाई नहीं देता है। स्थूल होने से शरीर ही दिखाई देता है। जैसे स्थूल शरीर के सात आवरण है उसी तरह स्थूल जगत के भी सात आवरण है। प्रत्येक में प्रवेश के लिए भिन्न–भिन्न द्वार है। दो आवरणों के बीच पूरे का पूरा लोक है जिसमें मृत्यु के बाद वे ही जीवात्माए प्रवेश करती है जिनकी आत्मिक उन्नति वैसी ही है। आगे के द्वार उसके लिए बन्द रहते हैं। जीवनमुक्त पुरुषों को भी इन्हीं लोकों से होकर जाना पड़ता है लेकिन वह इनमें रुकते नहीं। इनके अधिकारी देवता इन्हें आगे के लोकों में पहुंचा देते हैं।

मृत्यु के बाद जीवात्मा अपने क्रमों एवं विकास के अनुसार निर्धारित लोक में ही प्रवेश करता है। आगे के लोक में उसकी गति न होने से वह उसी लोक में उसके अधिमानी देवता के नियंत्रण अनुशासन में रहता है तथा पुर्नजन्म तक उसी में सुख–दुख का अनुभव करता है।

जीवात्मा का स्थूल शरीर से ब्रह्म तक की यात्रा में से सात शरीर या सात आवरण बाधा स्वरूप हैं जिन्हें इस स्थूल शरीर में रह कर साधना द्वारा पार किया जाता है। सातवें को पार करने पर ही मोक्ष

प्राप्त होता है। 'योगी' एक–एक करके पार करता है जबकि भक्त इनको एक साथ पार कर जाता है। इसलिए भक्त को योगी से श्रेष्ठ माना जाता है। इन आवरणों में कुछ तरल है कुछ सधन है। (सधन) को पार करने में विशेष प्रयत्न करना पड़ता है। प्रत्येक आवरण पार करने पर साधक को विशेष (अनुभूतियां) होती हैं जिससे उसका व्यक्तित्व निरन्तर निखरता जाता है।

आवरण है:–

1) स्थूल शरीर (फीजीकल बाडी) (Physical Body)
2) आकाश या भाप शरीर (इथरिक बाडी) (Eitheric Body)
3) सूक्ष्म शरीर (एस्ट्रल बाडी) (Aestral Body)
4) मनस शरीर (मेण्टल बाडी) (Mental Body)
5) आत्मिक शरीर (स्प्रेच्यूल बाडी) (Spritual Body)
6) ब्रह्म शरीर (कोस्मिक बाडी) (Cosemic Body)
7) निर्वाण शरीर (बाडीलेस बाडी) (Bodylace Body)

इनमें प्रत्येक के सात खण्ड हैं।

सात आवरणों में स्थूल, मनस, आत्मिक तथा ब्रह्म शरीर सधन हैं जिन को पार करने में काफी कठिनाई होती हैं। अन्यों को शीघ्र ही पार किया जा सकता है। यह जो सात आवरण हैं इन्हें *"सात आकाश"* भी कहा जाता है और यह भी कहा जाता है कि *"ईश्वर सातवें"* आसमान में हैं। सात आसमान, भौतिक जगत् के नहीं बल्कि सूक्ष्म जगत के हैं जिनका ज्ञान की अवस्था में अनुभव होता है। इन सात आवरणों के अनुसार सूक्ष्म सात लोक हैं। हिन्दुओं ने इनको *"भूः"*, *"भुवः"*, *"स्वः"*, *"महः"*, *"जनः"*, *"तपः"* और *"सत्य"* कहा है।

"थियोसाफी" ने इन को *"भूलोक"*, *"भुवलोकि"*, *"काम लोक"*, *"मनस लोक"*, *"स्वर्ग लोक"*, *"बुद्धि लोक"*, *"आत्म लोक"* तथा *"निर्वाण लोक"* कहा है।

इनका विभाजन और भी कई प्रकार से किया गया है। योग

साधना द्वारा साधक एक–एक कर के पार करता है किन्तु ब्रह्म के उपासक इनको एक साथ पार कर *"मोक्ष"* को प्राप्त हो जाते हैं। यह शरीर उनके लिए बाधा नहीं बनते न मृत्यु के बाद उन्हें विभिन्न लोकों में रहना पड़ता है। कुण्डलिनी जागरण द्वारा भी एक–एक को पार करना पड़ता है।

स्थूल शरीर

जीवात्मा की विकास यात्रा की शुरूआत इसी *"स्थूल"* शरीर से होती है संसार के सभी कार्यों तथा अनुभवों का माध्यम यही है। इसी के द्वारा जीवात्मा का विकास होता है। इसके बिना दूसरा कोई उपाय नही। जीवात्मा की साधना के लिए जितनी भी साधनाएं है सभी इसी शरीर से हैं। शरीर को सताने या उसे हानि पहुंचाने से साधना में बाधा पड़ती है। जिससे जीवात्मा का विकास रुक जाता है। जब तक यह *"स्थूल"* शरीर, स्वस्थ, सशक्त और सन्तुष्ट नहीं होता हम किसी साधना में प्रवेश नहीं ले सकते।

शरीर पूर्णतः भौतिक तत्वों से बना है। इसमें चेतना अभौतिक है। विज्ञान भी शरीर बना सकता है परंतु इसमें चेतना का प्रवेश नही करा सकता। वह *"रोबोट"* (यन्त्र मानव) ही होगा। जन्म के बाद *"सात वर्ष"* तक इसी का विकास होगा। इसके भीतर के अन्य शरीर बीज रूप में रहते हैं जिनका उम्र के साथ विकास होता जाता है। इस समय *बुद्धि, भावना, वासना* आदि विकसित नहीं होती।

पशु का भौतिक शरीर ही विकसित होता है। जिनका जीवन पेट और प्रजनन की आवश्यकता पूर्ति तक ही है। वह भौतिक शरीर में ही जी रहे हैं। *"कुण्डलिनी"* के रूप में इसका संबंध *"मूलाधार चक्र"* से है जो भौतिक शक्ति का प्रतीक है। शरीर में काम वासना की सम्भावनाएं हैं। *"14 वर्ष"* की उम्र में भावना शरीर के विकास के बाद विकसित होती है। यह काम, वासना जन्म के साथ ही आती हैं।

मनुष्य का शरीर पांच *'कोशों''* का बना है। यह स्थूल शरीर ही इसका *''अन्नमय''* *''कोश''* कहलाता है। अन्न से ही इसका पोषण होता है। जो व्यक्ति धन के पीछे भटकता है उसकी धर्म से *''अपेक्षा''* हो जाती है। वह धर्म को भी पैसा कमाने के जरिए के रूप में काम में लेता है ऐसा करने से उसका आत्मिक विकास रुक जाता है। जिसके मन में सदा धन, यश, मान, सम्मान, प्रतिष्ठा ही बनी रहती है उसकी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। वह भौतिक शरीर में ही जा रहा है। उसका ईश्वर तथा आत्मा से लगाव हो ही नहीं सकता। वह पाखण्ड मात्र कर सकता है।

हठयोग तथा अष्टांग योग, भक्ति, तन्त्र, ज्ञान आदि की सभी साधनाएं इसी शरीर से होती हैं। यह शरीर सबसे महत्वपूर्ण है। सभी साधनाओं का अन्त ब्रह्म प्राप्ति पर ही होता है।

शान्ति, शान्ति, शान्ति

.....

आकाश या भाव शरीर

स्थूल शरीर के पीछे भाव शरीर होता है जो धुएं जैसा होता है। मृत्यु से 13 दिन तक यह स्थूल शरीर के आसपास घूमता रहता है। इसका विकास 7 से 14 वर्ष की उम्र तक हो जाता है। इसी के विकास से *''यौन''* परिपक्वता आती है। विकास यही तक रुक जाता है। यह यौन किरया तक ही सीमित है। यह *''पेट और प्रजनन''* को ही जीवन का सार समझता है यह विकास पशुओं में भी पाया जाता है।

शरीर के गिर्द दिखाई देने वाला *''आभामण्डल''* (ओरा) इसी शरीर के कारण है। इस शरीर का संबंध *''कुण्डलिणी''* के (स्वाधिष्ठान) चक्र से है। जिसके विकास से ही इसका विकास है। इसके विकास से *भय, क्रोध, घृणा, अभय, प्रेम, क्षमा, भागना, डरना, हमला करना* आदि गुण पैदा होते हैं। साधना या शिक्षा द्वारा इनका रूपान्तरण *प्रेम,*

करूणा, अभय, मैत्री, अहिंसा में किया जा सकता है। गुण मनुष्य को प्रकृति से मिलते है। इनका विकास इस उम्र में हो जाना चाहिए। नहीं होने पर व्यक्ति *"असामान्य"* कहा जाता है। मन्त्र–योग की साधना इसी से होती है। जिसका (भाव) शरीर विकसित हो जाता है वही मनुष्य है अन्यथा पशु।

'छाया शरीर' ही *'प्राणमाय कोश'* है। यह *'कोश'* सूर्य से प्राप्त *"विद्युत चुम्बकीय"* और जीवन शक्ति को ग्रहण कर पाचन करता है–जिससे *"प्राणदायक"* शक्तियों का निर्माण होता है। वह स्थूल शरीर में पहुंचाता है। *"छाया"* शरीर के बाहर निकलने पर मुर्छा आ जाती है। कलोरोफार्म से भी *"छाया"* शरीर का बहुत सा भाग बाहर निकल जाता है। जिससे शरीर का भान नहीं रहता।

"छाया" के बाहर निकलने पर ही (भूतों) प्रेतों का प्रभाव होता है। मृत्यु के समय (चेतना) (छाया) शरीर को बाहर ले जाती है। 'पुर्नजन्म' के समय यह (छाया) शरीर स्थूल शरीर के ढांचे पर स्थूल शरीर से पहले ही बन जाता है। इसी ढांचे के अनुसार स्थूल तत्वों का संग्रह होकर स्थूल शरीर का निर्माण होता है।

सूक्ष्म शरीर

भाव शरीर स्थूल शरीर का ही एक हिस्सा है। यह मृत्यु के कुछ समय ही बाद उसके साथ ही नष्ट हो जाता है। इससे परे सूक्ष्म शरीर है। यह जीवात्मा का स्व शरीर है। यह शरीर मनुष्य में "14 वर्ष से 21 वर्ष" की आयु तक विकसित हो जाना चाहिए। इसके विकसित न होने पर मनुष्य में कमी आ जाती है।

इसके विकसित होने पर बुद्धि, तर्क तथा विचार विकसित होते हैं। इस शरीर के विकास होने पर संस्कृति का विकास होता है। इसमें सन्देह, विचार, श्रद्धा, विवेक की सम्भावनाएं हैं। सन्देह और विचार जन्मजात से हैं। श्रद्धा और विवेक इनका रूपान्तरण है।

"सन्देह" से *"श्रद्धा"* और *"विचार"* से ही *"विवेक"* उत्पन्न होता है। विचार नहीं करने वाला अन्धविश्वासी हो जाता है। वह हठधर्मी व दुरग्रही हो जाता है। विवेक वाले का निर्णय निश्चित और स्पष्ट होता है। जो *"सूक्ष्म"* शरीर को विकसित कर लेते हैं उनके चेहरे के चारों और *आभामण्डल* (ओरा) दिखाई देता है। यह (आत्मा) का ही प्रकाश है। आभामण्डल *"सूक्ष्म कणों"* का बना होता है। जो आंखों से दिखाई नहीं देता। इसी सूक्ष्म शरीर से स्थूल शरीर का निर्माण होता है।

अधिकतर लोग इसी पर थम जाते हैं रुक जाते हैं लेकिन यह सब कुछ नहीं है। सूक्ष्म शरीर का संबंध कुण्डलिनी के (मणीपुर चक्र) से है। इसके विकसित होने के बाद ही चौथा शरीर यानी मनस शरीर विकसित होता है।

मनस शरीर

पहले तीन शरीरों का विकास स्वाभाविक रूप से हो जाता है। *"चौथे"* मनस शरीर का विकास साधना द्वारा करना पड़ता है। यह इक्कीस वर्ष के बाद विकसित हो सकता है। इसके विकसित होने से अतीन्द्रिय शक्ति आ जाती है जैसे *"सम्मोहन"*, *"दूर संप्रेषण"*, *"दूसरों के मन के विचार पढ़ लेना"*, *"शरीर से बाहर निकल कर यात्रा करना"*, *"परकाया प्रवेश"*, अपने को *"शरीर से अलग कर लेना"*, *"हवा में ऊपर उठ जाना"*, *"पानी पर चलना"*, *"दीवार के पार देख लेना"*, *"वनस्पती"* से बात कर लेना आदि।

"धन्वंतरी" एवं *"लुकमान"* जी ने इसी कारण हजारों जड़ी–बूटियों की खोज की *"चरक और सुश्रुत"* ने इसी सिद्धि से शरीर के बारीक से बारीक अंगों का भी वर्णन किया है।

"सुषुम्ण–कुण्डलिनी और षटचक्रों" को विज्ञान अभी भी खोज नही पाया है। रूस ने एक हजार मील तक विचार "संप्रेषण" का

कार्य इसी विधि से किया है। इन विचार तरंगों का प्रभाव पदार्थों पर भी पड़ता है। संकल्प से चीज हिलाई या तोड़ी भी जा सकती है। विज्ञान ने भी इसके कई प्रयोग किए हैं। योग की सारी सिद्धियां जो (पतांजल) योग दर्शन में वर्णित है इसके विकसित होने पर सब आ जाती हैं।

"कुण्डलिनी" भी इसी शरीर की घटना है। जादू, चमत्कार इसी का विकास है। *"कुण्डलिनी"* से *"अनाहत"* चक्र जागृत होता है। इसके जागृत होने से काल तथा स्थान की दूरी मिट जाती है। व्यक्ति शाप दे सकता है। जिन मनुष्यों ने यह उपलब्धियां प्राप्त की हैं उनके द्वारा ही *"पुराण"* लिखे गए हैं। सिद्धियों के प्राप्त होने पर साधक यहीं उलझ जाता है। वह चमत्कार दिखाता फिरता है। उसके आगे की आध्यात्मिक यात्रा रुक जाती है। वह *"मोक्ष"* प्राप्त नहीं कर सकता। बहुत कम योगी–पुरुष आगे पहुंचते हैं। स्त्रियां भी इससे आगे नहीं जाती।

भक्ति मार्ग वाले इसे पार कर जाते हैं। यह शरीर ही वेदान्त का *"मनोमय कोश"* है। इस *"मनस"* शरीर के विकसित होने पर समाधि घटती है। इस समाधि से आत्मज्ञान होता है। इसे "आत्म समाधि" कहते हैं। इसमें *"आत्मा के प्रकाश"* के साथ सम्पर्क हो जाता है। यह *"मनस"* तल काफी गहरा है। इसके *"तीन"* परत है। *"अचेतन", समष्टि अचेतन, "ब्रह्म अचेतन"। इस अचेतन तल का शरीर पिछले जन्म के कर्माणुओं से बना है।* यह भी *"मरणधर्मा" है।* पिछले जन्म की स्मृतियों का जोड़ है। इसमें उतरने पर पिछले जन्मों का सब कुछ याद किया जा सकता है। यह भी मन ही है।

आगे बढ़ने पर साधक *"समष्टि अचेतन"* में प्रविष्ट होता है। इसमें प्रवेश करने पर दूसरे के अचेतन का ज्ञान हो जाता है। वह दूसरों की भावनाओं को जान जाता है। दूसरे के आते ही उसको पता चल जाता है कि वह क्या पूछने वाला है। ऐसा व्यक्ति सारे जगत से जुड़ जाता

है परंतु यह *"मन"* ही है *"ज्ञान"* की स्थिति नहीं। इससे पार हो जाने पर वह *"ब्रह्म अचेतन"* में प्रवेश करता है। यहां उसे अनुभूति होती है कि मैं ब्रह्म ही हूं। इसी को निर्वाण या मोक्ष कहते हैं।

यह जीवात्मा की *"परम"* और *"आखिरी स्थिति"* है इसमें भी अंहकार बचा रहता है तो वह ब्रह्म लोक में रहकर वहां के भोगों को भोगता है। इस से ब्रह्म शरीर को उपलब्ध होता है। यह भी मोक्ष ही है। अंहकार समाप्त होने पर ब्रह्म में लय हो जाता है। फिर कोई भेद नहीं रहता।

आत्मिक शरीर

आत्म शरीर कुण्डलिनी के *विशुद्ध चक्र* से संबंध रखता है। मनस शरीर से अपेक्षाएं न रहने पर इसमें प्रवेश करता है। इस का उपलब्ध होना महत्वकारी है। स्त्री–पुरुष का भेद समाप्त हो जाता है। आत्मा का कोई लिंग नहीं होता। जीवात्मा का अपना शरीर है। इस पर रुकने वाले को परमात्मा का अनुभव नहीं होता। *जीवात्माए* अनेक होने से वे अनेक आत्माएं मानेंगे अनुभव जीवात्मा का है"आत्मा" का नहीं। यहां भी *"मोक्ष"* का अनुभव होता है। यह स्थिति आनन्द की है। फिर इसके आगे यात्रा करने की इच्छा नहीं होती। यहां आनन्द अपनी चरम ऊँचाई पर होता है। अधिकांश साधक यहां रुक जाते हैं। ब्रह्मज्ञान तक नहीं पहुंचते। योग की क्रियाएं एवं साधनाएं यहीं समाप्त हो जाती हैं। पुरुषार्थ की अन्तिम सीमा यही है। इसके आगे समर्पण ही महत्वपूर्ण हो जाता है।

"पुरुषार्थ" से बढ़ने वाले आगे नहीं जा सकते। यहां *"अंहकार"* तो मिट जाता है परंतु अस्मिता बनी रहती है। जो मनुष्य यहां पहुंच जाता है उस की *"घृणा"*, *"हिंसा"*, *"दुख"*, *"वासना"* छूट जाती है। इस शरीर को जो व्यक्ति प्राप्त कर लेता है वह देव योनि में रहता है। *"मोक्ष"* प्राप्त करने के लिए दुबारा मनुष्य योनि में आना पड़ेगा। यहां पहुंचे हुए व्यक्ति से शक्ति पात सम्भव है। *"हठयोगी"*, *"योगी"*

व *"आत्मसाधक"* यहीं तक पहुंच पाते हैं। यह *"वेदान्त"* का विज्ञान मय कोश है।

ब्रह्म शरीर

आत्मिक शरीर जीवात्मा का ही स्वरूप है। इसको खोने से *"ब्रह्म"* शरीर की प्राप्ति होती है। इसमें पाना नहीं खोना ही उपलब्धि है। इस शरीर के प्राप्त होने पर *"ब्रह्म"* अवस्था की उपलब्धि होती है।

इसको प्राप्त व्यक्ति ब्रह्म लोक में निवास करता है। यहां पहुंच कर *"अहं ब्रह्मास्मि"* की घोषणा कर सकता है। इस शरीर का संबंध *"कुण्डलिनी"* के *"आज्ञा "* चक्र से है। यहां असीमता भी खो जाती है। इसका *"पुर्नजन्म"* नहीं होता लेकिन यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। कर्मों के अनुसार नहीं वह अपनी इच्छा से करुणावश जन्म ले सकता है। ऐसे *"व्यक्तियों"* को *"अवतार"* कहा जाता है। व्यक्ति ब्रह्म हो जाता है। इस छठवें की समाधि को ब्रह्म समाधि कहते हैं। इसमें आकर (समष्टिगत) हो जाता है। यही आनन्दमय कोश है।

निर्वाण शरीर

अगर *"ब्रह्म"* शरीर में असीमता बची भी रहे तो उसे भी खोने पर निर्वाण उपलब्ध हो जाता है। *"इसमें शून्य ही शेष"* रह जाता है। यहां दीपक बुझ जाता है। *"ज्योति"* शून्य में *विलीन* हो जाती है। वह ब्रह्म में विलीन हो जाता है। बूंद सागर में मिल कर *"एकाकार"* हो जाती है, एक हो जाती है। वहां न अंहकार रहता है न *"ब्रह्म"*। यही *"निर्वाण"* इसका तात्पुक *"सहस्त्रार"* से है। ब्रह्म ज्ञान चाहे तो कल्पान्त तक ब्रह्मलोक में रुक सकता है। यह आखिरी बाधा है। असीमता के खोने के भय से अधिकांश साधक यहीं रुक जाते हैं। यह *"महामृत्यु"* है। ब्रह्म शरीर में शरीर शुद्ध चेतनमय होता है। यह अशरीरी स्थिति है। निर्वाण शरीर में प्रवेश संकल्प मात्र से ही होता है। यहां साधना तथा पुरुषार्थ की गति नहीं है। निर्वाण शरीर में प्रवेश

के बाद सूचना देने वाला बचता ही नहीं। जो इसमें प्रवेश कर गया वह लौट कर नहीं आया। यह सात शरीर बाधाएं हैं जिनको पार करने पर ही अन्तिम निर्वाण की प्राप्ति होती है।

ॐ शान्ति, शान्ति, शान्ति

.....

ब्रह्म वेताओं की यात्रा
ब्रह्म ज्ञान

परब्रह्म सर्वव्यापी है। उसकी अनुभूति चित्त में ही होती है। इसी लिए उसे हृदय में स्थित कहा जाता है। परमात्मा के गुण तो जीवात्मा में भी होते हैं पर वह अंहकार, कामना, वासना होने के कारण तिरोहित होता है। परब्रह्म ज्ञान के अभाव में ही, जीवात्मा अज्ञान के कारण शरीर, मन, इन्द्रियों को ही महत्व देती है। यह उसके बंधन का कारण है। अगर यह बंधन टूट जाए तो उसे सत्य ज्ञान, सत्य स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। इसी ज्ञान से मुक्ति होती है। ब्रह्म ज्ञान से ही मोक्ष होता है। जब तक *"ईश्वरीय"* गुण प्रकट न हो जीवात्मा को ही शरीर के साथ मान लेते हैं। यह बाधा सबसे बड़ी बाधा है। इसे पार किए बिना ज्ञान सम्भव नहीं।

उपासना का बहुत महत्व है क्योंक ईश्वर साकार भी है। उपासना से प्रत्यक्ष होता है। उस का प्रत्यक्ष दर्शन भी सम्भव है किन्तु यह अभ्यास के बिना सम्भव नहीं। जगत के भेद और अभेद दोनों से परब्रह्म का संबंध है। ज्ञानमार्ग "अभेद उपासना" को ग्रहण करते हैं और भक्त, भेदोपासना को फल दोनों का एक ही है। निष्काम भाव से किए गए कर्म भी परमात्मा की प्राप्ति में सहायक हैं। त्याग उचित नहीं। अन्य सब धर्मों की अपेक्षा भगवान की भक्ति विषयक धर्म अधिक श्रेष्ठ है।

ॐ शान्ति, शान्ति, शान्ति

.....

ब्रह्मज्ञान के उपासक

1) ब्रह्म विद्या के तीन प्राकर के उपासक होते हैं। जिनको इसी जन्म में ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है। जीवनमुक्त होकर "प्रारब्ध" भोग की समाप्ति पर देह छोड़ने के बाद सीधे पपरमात्मा को प्राप्त होते हैं।

2) दूसरे वह साधक हैं जो परब्रह्म को प्राप्त नहीं कर ब्रह्मलोक में जाकर वहां के भोगों को भोगते हुए कल्पान्त तक वहां निवास करते हैं।

3) तीसरे वह साधक जिनको ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ है।

ब्रह्मज्ञान का फल

जन्म–मरण से छूट कर उस परमात्मा को प्राप्त होना ही है। इसका सबसे बड़ा यही फल है। ब्रह्मज्ञान ही मुक्ति का हेतु है। देवताओं की साधना का फल साधकों की इच्छा अनुसार ही मिलता है। यज्ञादि कर्मों का फल स्वर्गादि में जाकर लौट आना है। ब्रह्मज्ञान के उन साधकों को जिनको इस जन्म में ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं हुआ उनका फल उनको जन्मान्तर में मिलता है। अभ्यास व्यर्थ होता नहीं। यह ज्ञान का ही फल है। परमात्मा की प्राप्ति का फल हर्ष, शोक का नाश, समस्त संशयों का नाश, पापों से छूटना आदि है। इनके छूटने से परमात्मा की प्राप्ति होती है।

"ब्रह्मज्ञानियों" को उनके संकल्प के अनुसार दो प्रकार का फल प्राप्त होता है। (1) परब्रह्म को प्राप्त होना तथा (2) ब्रह्मलोक को प्राप्त होना। ये दोनों ही अन्त में मोक्ष देने वाले हैं।

परब्रह्म को प्राप्त होना

जिन ज्ञानियों का संकल्प ब्रह्मलोक की प्राप्ति है। उनको ब्रह्म, साक्षात्कार नहीं हो सकता। उनके अन्तःकरण में ब्रह्मलोक के महत्व का भाव होने से उसके कारण शरीर से संबंध विच्छेद नहीं होने से ऐसे साधक ब्रह्मलोक में जाते हैं। ब्रह्मज्ञानियों में भी ये दो फल भेद

हैं। यह ब्रह्मलोक (कार्य ब्रह्म) कहलाता है। जहां जीवात्मा अन्तकाल तक रहता है तथा प्रलय काल में ब्रह्म के सहित परब्रह्म में लय हो जाता है। इनका भी पुरागमन नहीं होता। ब्रह्मलोक में पहुंचे ज्ञानियों का इच्छानुसार सब लोकों में गमन होता है। इनको वहां *"दिव्य"* भोग भोगने का अधिकार है।

उन्हें जगत की *"उत्पति"*, *"संचालन"* तथा प्रलय का कार्य करने का अधिकार नहीं होता। ये ब्रह्म के अधीन रहते हैं अतः सृष्टि के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते। न इन की शक्ति ही है। जो साधक *"ब्रह्म"* शरीर को प्राप्त कर लेते हैं वह इस लोक के अधिकारी होते हैं। *"निर्वाण"* शरीर को प्राप्त करने वाले सीधे *"परब्रह्म"* में लीन हो जाते हैं। कुछ अधिकार प्राप्त मनुष्य महापुरुष जैसे *"वशिष्ठ"*, *"व्यास जी"* आदि लोक कल्याण के लिए कहीं भी आ जा सकते हैं। यह अन्य मुक्त पुरुषों से भिन्न होते हैं।

ब्रह्मलोक में जाने का मार्ग

जो लोग ब्रह्मलोक में जाते हैं उनकी मृत्यु के बाद सबसे पहले "वाणी" समस्त इन्द्रियां मन में स्थित हो जाती हैं। मन प्राण में, प्राण जीवात्मा में तथा जीवात्मा पांचों सूक्ष्म भूतों में स्थित हो जाती है। यही "सूक्ष्म" भूत समुदाय तेज से मिला हुआ है, इसे तेज भी कहते हैं।

जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर (लिंग शरीर) है। इसी को लेकर यह "ब्रह्मलोक" की यात्रा करता है। इन सबके एक हो जाने पर हृदय के अग्रभाग में प्रकाश हो जाता है। "ब्रह्मवेता" की यह ज्योति "ब्रह्मरन्ध्र" मार्ग से निकलती है। ब्रह्मलोक में जाने वाले की यह सुषुम्ना नाड़ी से निकलती है।

साधारण मनुष्य की अपने कर्मोनुसार अन्य मार्गों से निकलती है। *"ब्रह्मलोक"* में जाने वाली *"जीवात्मा"* तथा *"साधरण मनुष्य"* जिनका पुर्नजन्म होता है। सूक्ष्म, भूत, समुदाय में स्थित होने तक का मार्ग एक

ही है क्योंकि ब्रह्मलोक में भी जीवात्मा अपने सूक्ष्म शरीर से ही जाती है। *"ब्रह्मलोक"* में जाने वाले की जीवात्मा *"स्थूल शरीर से निकल कर"* पहले सूर्य लोक में जाती है जो ब्रह्मलोक का द्वार है। साधारण मनुष्य के लिए यह द्वार बन्द रहता है खुलता ही नहीं। इस तेजोमय पदार्थ (सूर्य) की गति ब्रह्मलोक तक है। (ज्ञानी महापुरुष) इसी द्वार द्वारा वहां तक पहुंच जाते हैं। *"ब्रह्मलोक"* में जाने वाले ज्ञानी के लिए *"रात्रि"* या *"दक्षिणायन"* की कोई बाधा नहीं।

भीष्म पितामह को ब्रह्मलोक में नहीं देव लोक में जाना था। उनको इन्तजार इसलिए करना पड़ा और वह वसु देवता थे। *"दक्षणायन"* के समय देवलोक में रात्रि होती है। इसलिए उन्हें *"उत्तरायण"* की प्रतीक्षा करनी पड़ी। साधक को ब्रह्मलोक में जाने का संकल्प करने पर देवयान मार्ग से *ब्रह्मलोक* प्राप्त होता है। ब्रह्मलोक में जाने वाले सभी साधक और उपासक इसी *"देवयान"* मार्ग से ही ब्रह्मलोक पहुंचते हैं। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इस मार्ग को (अर्चिमार्ग) या (उत्तरायण) मार्ग भी कहते हैं। इन लोकों के अधिमानी पुरुष उन्हें आगे लोकों में पहुंचा देते हैं। यह सूक्ष्म शरीर धारी देवता होते हैं। ब्रह्मलोक जाने वालों के सूक्ष्म तत्व कर्मों की गति के अनुसार विभिन्न लोकों में छिलके की तरह छूटते जाते हैं। अन्त में ब्रह्मलोक की प्राप्ति है। साधारण लोग जिस लोक के अधिकारी होते हैं वही रुक जाते हैं। आगे के द्वार उनके लिए बन्द होते हैं।

ऊँ शान्ति, शान्ति, शान्ति

.....

साधारण जीवों की परलोक यात्रा
अलग–अलग लोक

यह चेतन तत्व सात आवरणों से युक्त (मिलकर) होकर स्थूल शरीर धारण करता है उसी तरह प्रकृति के तत्व धनीभूत (मिलकर) अलग–अलग लोकों का निर्माण करते है। पदार्थ की "सूक्ष्मता" के आधार पर सात लोक हैं। सभी पदार्थ "प्रकृति तथा पुरुष" परमाणुओं

के समूह से बने हैं। सब पदार्थ एक ही प्रकार के पुरुष प्रकृति परमाणुओं के समूह से बने होते हैं (उसे लोक कहते हैं।)

सभी प्रकार के परमाणुओं की "आत्मा" ईश्वर है। जो सब के केन्द्र रूप में स्थित है। प्रकृति का संयोग होने से उस पर प्रकृति के परमाणुओं के आवरण चढते जाते हैं जिससे उसकी घनता बढ़ती है। ऊँचे के लोकों में कम तथा नीचे के लोकों में ज्यादा आवरण (पर्दे) रहने के कारण उनकी घनता अधिक होती है। जीवात्मा भी इसी प्रकार प्रकृति के आवरणों के कारण कम घनता से अधिक घनता को प्राप्तकर स्थूल शरीर का रूप धारण करती है।

मृत्यु के बाद यह स्थूल शरीर का त्याग कर ऊंचे के कम घनता वाले लोकों में गमन करती है तथा अपनी ही घनता के अनुकूल निवास करती है। सबसे कम घनत्व के कारण यह "ब्रह्मलोक" में रहती हैं। इसका भी त्याग करने पर परमात्मा में लय हो जाती है। लोकों का अर्थ ही है उस "ईश्वर" की "आवरण युक्त" अवस्था जीवात्मा का संबंध इन्हीं सात लोकों से है। अपनी उन्नति के अनुकूल प्रवेश करती है। इन लोकों का "नामकरण" कई प्रकार से किया जाता है। मानवीय चेतना, प्रकृति तथा उसके विकास क्रम के आधार पर।

भू-लोक

सब लोकों में भू-लोक की अवस्था स्थूल है। इसके पदार्थ अधिक घनत्व वाले होते हैं "चक्षुन्द्रिय" से दृश्य है। स्थूल पदार्थ पिंड से लेकर 'द्रव', 'गैस', 'परमाणु' तथा 'ईथर' तक की सभी अवस्थाएं सम्मिलित है। यही दृश्य जगत कहलाता है। स्थूल शरीर धारी प्राणी भी इसी प्रकार अधिक घनत्व वाले होने से इसी स्थूल जगत में निवास करते हैं। सूक्ष्म" जगत के प्राणी इसमें आ सकते हैं लेकिन वह स्थूल इन्द्रियों द्वारा देखे नहीं जा सकते।

यह सूक्ष्म दृष्टि व्यक्तियों को दिखाई देते हैं। जब सूक्ष्म प्राणी अपने अणुओं को अधिक घनत्व वाला बना लेते हैं तभी दिखाई देते हैं। यह लोक अज्ञान तथा अविद्या का लोक है। मनुष्य ज्यों–ज्यों इस लोक से ऊपर जाता है त्यों–त्यों ज्ञान का प्रकाश होता है। इसकी अन्तिम परिणति मोक्ष में होती है "भू" लोक में मनुष्य जन्म लेता और मरता है। "मृत्यु" इसी लोक की घटना है इसी लिए इसे "मृत्यु" लोक भी कहते हैं। यह चेतना की जागृत अवस्था है। सुख–दुख का अनुभव इसी लोक में है।

इस लोक में कामना एवं वासना का अज्ञान रहता है। इसमें जीव सुख मानता है यही अज्ञान है। इस लोक में माया का विस्तार अधिक है। ज्ञान की इच्छा वाले इसमें विषयानन्द की इच्छा नहीं करते। जीवात्मा को स्थूल से सूक्ष्म की ओर सात लोक पार करने पड़ते हैं। स्थूल शरीर का संबंध "अन्नमय" कोश से है। स्थूल शरीर का पोषण अन्न से ही होता है। जीवात्मा को ब्रह्म जगत का ज्ञान स्थूल शरीर से इस स्थूल लोक मे ही होता है। "मृत्यु" के बाद यह जीवात्मा स्थूल शरीर का त्याग करती है। स्थूल शरीर के त्याग के बाद सूक्ष्म तत्वों को साथ लेकर जाता है जो बीज स्वरूप है।

काम लोक

भू–लोक सब से स्थूल है। इससे "सूक्ष्म" काम लोक है जिसे "भुवलोक" भी कहते हैं। हिन्दु इसी को (प्रेत लोक) कहते हैं। मृत्यु के बाद व्यक्ति सर्वप्रथम इसी लोक में प्रवेश करता है। यह कामना लोक है। इसमें वासना ग्रस्त जीव ही रहते हैं। इसके भी सात विभाग हैं "पितर लोक" भी इसी की एक श्रेणी है। इसमें अधिक चेतना वाली एवं शान्त आत्माएं रहती है। मानसिक स्तर के अनुसार इसे "निम्न मनस लोक" भी कहते हैं।

यह लोक सूक्ष्म परमाणुओं से बना है। "ईथर" तक की अवस्था

स्थूल की है। "ईथर" को "सूक्ष्म" किया जाता है। वह "भुवलोक" का पदार्थ बन जाता है जैसे स्थूलता कम होती है जीवन अधिक क्रिया शील रहता है। "सूक्ष्म" शरीर से इसमें प्रवेश होता है जो व्यक्ति भौतिक कामनाओं में अधिक ग्रस्त होते हैं वह मृत्यु के बाद इस लोक में रहते हैं क्योंकि परमाणु एक प्रकार के होते हैं। यह लोक स्वपनवस्था तुल्य है। प्रेत, पिशाच, पित्तर इत्यादि इसके कई विभाग हैं। "काम लोक" "भुवलोक" का ही एक हिस्सा है।

जीवात्मा अपनी कामनाओं, वासनाओं, इच्छाओं के आधार पर इनमें एक अवधि तक रहता है। अवधि हर व्यक्ति की कर्मों के अनुसार अलग–अलग है। इसमें पशु प्रकृति अधिक आती है। इसमें यम–लोक आदि की आवस्थाएं आती हैं। सबसे नीचे खण्ड में वातावरण अन्धकार युक्त–सुनसान होता है। जीवात्मा के जितने भी *"दुर्व्यसन"* है प्रकट हो जाते हैं। जहां पर शराबी, कुकर्मी, दूसरों को दुख देने वाले लोक रहते हैं। यह लोग पृथ्वी के दुष्ट लोगों पर अपना प्रभाव जमा कर नीच कर्म भी करवाते हैं। भली आत्माएं भले व्यक्तियों की ओर आकर्षित होकर उनको अधिक भले कार्य करने में सहायता करती है। इस लोक में जीवों को अपने सुख दुःखों का अनुभव होता है। अच्छे–बुरे कर्म जो स्थूल लोक में किए हैं उनका यहां पाचन होता है।

इस लोक में चेतना के विकास की सम्भावनाएं नहीं है। जीव के *"अन्तराल"* का समय है। पुर्नजन्म से पूर्व निम्न एवं सामान्य मनस वाले एक निश्चित समय तक यहां रहना पड़ता है। यहां रह कर जीवात्मा की शुद्धि होती है। फिर वह आगे के लोक में जाता है। यहां मनुष्य की नियति, कामना, वासना, सदाचार बुद्धि में कोई अन्तर नहीं आता। मनुष्य जैसा है वैसा ही रहता है। स्थूल शरीर नहीं होता।

हर एक खण्ड के वासी दूसरे से नहीं मिल सकते। अपने–अपने वर्ग के व्यक्तियों के साथ रहते हैं। ये दूसरे खण्ड का हाल ही नहीं जान सकते। यहां जो व्यक्ति पहुंच जाता है वे अपने विचारों का प्रभाव

दूसरों पर डाल सकता है। यह सूक्ष्म रूप से हानि–लाभ पहुंचा सकते हैं। इस लोक के पदार्थ सूक्ष्म तथा पार दर्शक होते हैं। ये प्रेत आह्वान पर मध्य में आते हैं और अपना हाल सुनाते हैं।

इनकी बुद्धि कम होती है। इसलिए इनकी सूचनाएं काम की नहीं होती। अपने मित्रों तथा परिजनों को दिखाई देते हैं। घर की चीजें समान नीचे फैंकते हैं ताकि उनका ध्यान हमारी तरफ हो। स्वपन में भी दिखाई देते हैं। अगर कोई इनकी इच्छा पूरी करा दे तो इनकी सदगति हो जाती है और आगे के लोक को चले जाते हैं।

पांचवी भूमिका काफी आनन्द दायक है। स्थूल स्वर्ग लोक है। इसाइयों तथा मुसलमानों ने जिस स्वर्ग का जिक्र किया है वह इसी लोक का सर्वोच्च स्तर है। यहां मन चाही वस्तुएं संकल्प मात्र से मिल जाती हैं यहां सभी मत के लोग हैं। यहां भाषा की कठिनाई बनी रहती है।

सातवीं भूमिका में अक्लमन्द मनुष्य और पुरुष इसी में रहते हैं। यहां भी पुस्तकालय से पुस्तकें पढ़ते रहते हैं। राजनीतिज्ञ, राज्यकर्ता यहां काफी समय तक रहते हैं तथा अपने अधूरे कार्यों को पूरा करते हैं। यहां से जीव आगे की ओर या स्वर्ग की ओर निकल जाते हैं। उसका "भुवलोक" के कणों से बना शरीर छिलके की भांति पड़ा रह जाता है। आहिस्ता–आहिस्ता नष्ट हो जाता है। इस समय *"श्राद्ध आदि कर्मों"* से उस जीवात्मा पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इसका संबंध *"प्राणमय कोश"* से है।

मनोलोक

जो मनुष्य स्थूल शरीर में ही जीते हैं, पेट और प्रजनन को जीवन का सार मानते हैं। कामनाएं एवं वासनाएं भौतिक वस्तुओं से सन्तुष्ट हैं वह मृत्यु के बाद काम लोक में निवास करते हैं। *"कामलोक", मनोलोक* का ही एक हिस्सा है रूप है। उच्च तल *स्वर्ग लोक* कहलाता है और *"मनोलोक" "सामान्य"* तल है। तीनों मन के ही

भाग हैं जिसमें जीव सूक्ष्म शरीर में रहता है।

"मनोलोक" जीवात्मा का जन्म स्थान है। मन का अर्थ विचार करने वाला मनुष्य है। आत्मा का जब मन के साथ संयोग होता है तभी उसकी संज्ञा जीवात्मा होती है। मन से मुक्त होने पर वह शुद्ध चैतन्य स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। इसी को निर्वाण मोक्ष आदि कहते हैं।

"भुवलोक और मनोलोक" में प्रकृति का ही अन्तर है। यहां की प्रकृति *"भुवलोक"* से ज्यादा सूक्ष्म है। जीव विशेष क्रियाशील रहते हैं। प्रकृति की अवस्था के अनुसार इसके भी सात विभाग है। जिन में अलग–अलग प्रकार की जीवात्माएं रहती हैं। यह सात स्तर प्रकृति कणों की घनता के आधार पर हैं। इनमें चार खण्ड रूप खण्ड है और अन्तिम तीन खण्ड अरूप है जिस प्रकार सृष्टि निर्माण में ब्रह्म से सर्वप्रथम *"ब्रह्मा"* की उत्पति होती है जिससे सृष्टि का निर्माण होता है। उसी प्रकार व्यक्ति में मन है जिसकी उत्पति भी आत्मा से होती है। इस *"समष्टिगत"* मन को *"ब्रह्मा"* कहते हैं और *"व्यष्टिगत"* मन को मन कहा जाता है। जीवात्मा की समस्त क्रियाओं का आधार है।

इस *"मनोलोक"* से निम्न खण्ड को वेदान्त में *"मनोमय"* कोश तथा उच्च खण्ड को *"विज्ञानमय कोश"* कहा गया है। जीवात्मा का निवास स्थान *"विज्ञानमय"* कोश है। *"थियोसाफी"* ने इसे ही *"कारण शरीर"* कहा है। यह एक तेजोमय पिण्ड के रूप में है। इसे "हिरण्यगर्भ" भी कहा जाता है। *"तेजोमय पिण्ड"* के भतीर *"परमात्मा"* का निवास है। जिस के हटने पर ही (आत्मज्ञान) होता है। इसको *"ईशावास्य"* उपनिषद सूत्र 15 एवं मुण्डकउपनिषद सूत्र 2/2/9 में स्पष्ट किया गया है। कारण शरीर के नष्ट होने पर फिर शुद्ध ब्रह्म ही शेष रहता है। जीवात्मा उस समय अपने अस्तित्व को उस ब्रह्म में विलीन कर देता है।

जीवात्मा का विकास धीरे–धीरे होता है। संसार के सभी अनुभव तथा संस्कार देह में जमे रहते हैं और भविष्य में फल देते हैं। मुक्तावस्था तक हर एक जन्म में कारण शरीर बना रहता है। *''स्थूल या लिंग शरीर और मनोमय कोश''* नष्ट होते हैं प्रत्येक जन्म में नये बनते रहते हैं। जमे हुए सभी कर्म दुबारा नए शरीर का कारण बनते हैं। यही प्रारब्ध कहलाता है। जीवात्मा का निवास ''मनसलोक'' की पंचम भूमिका में है। हर एक शरीर में जीवात्मा ही कर्ता है। उसी से अंहकार उत्पन्न होता है। यही अविद्या या भ्रम है। अपनी वासना के कारण यह अपने को शरीर या मन आदि समझ लेता है। *जीवात्मा ही कर्ता एवं भोक्ता भी है। शरीर कर्ता एवं भोक्ता नहीं है।*

''मनोलोक'' कई प्रकार के जीव रहते हैं। ये *''प्रतिभा''* सम्पन्न होते हैं। इसाई व मुसलमान जिनको फरिश्तें या ईश्वर दूत कहते हैं। वे इसी लोक के वासी हैं। इनकी *''बुद्धि''*, *''शक्ति''* और ज्ञान विशाल होती है। इसके अरूप खण्ड में *''जीवनमुक्त''* महात्मा और उनके दीक्षित शिष्य रहते हैं। मनुष्य को नई–नई प्रेरणाएं और सूझ देते रहते हैं।

ऊँ शान्ति, शान्ति, शान्ति

.....

स्वर्ग लोक

''मनोलोक'' से भी अधिक सूक्ष्म परमाणुओं से यह लोक बना है। *''कामलोक''* का वास पूरा होने पर लिंग शरीर वहीं छूट जाता है। कामनाओं के बीज मनोमय कोश में खिंच जाते हैं और मनोमय कोश के नष्ट होने पर यह कारण खिंचकर मिल जाते हैं। जीव अपनी यात्रा के लिए इस लोक में प्रवेश करता है। जिस समय इस जीवात्मा के पुर्नजन्म का अवसर आता है तो उसका कारण शरीर इन्हीं लोकों में पुनः सामग्री संग्रह करता है। जीवात्मा का कारण शरीर रह जाता है

जो *"मोक्ष"* पर्यन्त भी बना रहता है।

यह लोक *"देवगणों"* का लोक है। जिस स्थूल स्वर्ग लोक का वर्णन किया गया है। वह काम लोक का ही एक भाग है। इसमें देवगणों का ही वास है। इसके भी सात विभाग हैं। नीचे के चार खण्ड रूप विभाग। शेष अरूप खण्ड। सबसे नीचे के खण्ड में जीव *"मनोमय कोश"* से संबंधित रहता है। उसके त्याग पर वह उच्च खण्ड में जाता है:– *शुद्ध विचार – शुद्ध मन – सदाचार के प्रयत्न और उपकारार्थ कर्म* करने वाले जीव यहां पहुंचते हैं। कोई भी सद्गुण व्यर्थ नहीं जाता चाहे वह क्षण भर के लिए किया गया हो।

थोड़ी भलाई करने वाले भी यहां थोड़ी अवधि के लिए भी आवश्य पहुंचते हैं। *"पाशवी"* वृति वाले का यहां प्रवेश नहीं होता। यहां कोई विरोधी व्यक्ति नहीं आ सकता। जीव को अनेक कर्मों की याद आ जाती है। आगे के जन्मों का भी पता लग जाता है। बड़े–बड़े महात्माओं से सम्पर्क होता है। जिन के *"मनस"* शरीर का पूर्ण विकास होता है वह ही इसमें पहुंचते हैं। यहां जीव को सभी प्रकार का सुख मिलता है इसलिए इसे स्वर्ग लोक कहते हैं। यहां सभी कामनाएं इच्छा मात्र से पूरी हो जाती है। उत्तम गुणों वाले ही यहां पहुंचते हैं। यहां सभी संशय मिट जाते हैं।

सबसे नीची "भूमिका" में हल्की मनोवृति के लोग रहते हैं। "दूसरी भूमिका" में "ईष्टदेव" के दर्शन भी होते हैं। यहां सभी धर्मों के लोग रहते हैं। "तीसरी भूमिका" में उद्धार चित्त एवं साहित्य के उत्साही लोग मिलते हैं। "चौथी भूमिका" में कला एवं साहित्य के बड़ेबड़े "संगीतज्ञ" यहां उत्तम गान करते रहते हैं। यहां उत्तम कोटि के "चित्रकार व मूर्तिकार भी मिलते हैं"।

प्रकृति की शक्तियों का अन्वेषण करने वाले वैज्ञानिक भी यहां मिलते हैं। विनीत तथा तत्व जिज्ञासु भी आते हैं जिन्हें यहां गुरू का सन्निध्या प्राप्त होता है। इस "चौथी भूमिका" तक जीवात्मा (मनोमय कोश) का त्याग कर कारण शरीर में प्रवेश करता है। जो इस की पांचवी भूमिका है। यह "अरूप खण्ड" है। इसमें प्रवेश कर जीव को

सृष्टि रचना का ज्ञान होता है। अपने कर्मों तथा फलों का ज्ञान हो जाता है।

इस "छठवीं" भूमिका में तेजस्वी महापुरुष रहते हैं। इससे ऊंची सातवीं भूमिका में "दीक्षित" लोगों का निवास है। यहां पहुंच कर अंह का नाश हो जाता है। यह जीव का "निज" धाम है। मनुष्य जीवन की यात्रा का चक्र यहां तक के लोकों के मध्य निरन्तर घूमता है। सम्पूर्ण आवागमन चक्र जीवात्मा का जीवन काल है। यह स्थूल शरीर तक ही नहीं है। जिस की मृत्यु पर मनुष्य अपनी मृत्यु समझ लेता है।

ऊँ शान्ति, शान्ति, शान्ति

.....

बुद्धि लोक

"मन" "बुद्धि" और *"आत्मा"* एक ही ईश्वर के तीन रूप है। जब मनुष्य *"मनस तल"* की अवस्था से आगे बढ़ता है तो उसका मन बुद्धि में लय हो जाता है और *"बुद्धि"* का *"आत्मा"* में लय हो जाता है। तीनों रूप एक–एक कर के एक के बाद एक प्रकट होते हैं और इसके उलटे (क्रम) से लय होते हैं। *"स्वर्ग"* तक के लोग मनः स्तर तक के ही हैं। इस के पार जाने वाला बुद्धि लोक में प्रवेश करता है। यहां मानवीय बुद्धि समाप्त हो जाती है। *"ईश्वरिय"* बुद्धि *"प्रज्ञा"* का प्रकरय होता है।

इस प्रज्ञा के प्रकट होने पर *"आवागमन"* के बंदन कट जाते हैं। यह निर्वाण चेतना की अवस्था है। निर्वाण लोक के *"पूर्ण मोक्ष"* का अस्वाद जीवात्मा को मिल जाता है। यह *"विज्ञानमय कोश"* है। यहां स्थित महात्माओं का विकास पूर्व कल्पों में ही हो चुका था तथा ये ही जगत की शासन व्यवस्था संभालते हैं। जैसे यह *"ईश्वर"* के मंत्री हों। जो *"देवगण"* नीचे के लोक की व्यवस्था – इन्ताजार करते हैं उनके भी यह आधिपति हैं। यह लोक सारे जगत का हृदय हैं यहां से प्राण की धाराएं सब ओर जाती हैं। कल्प के आरम्भ में ब्रह्मा जी

इसी लोक में प्रकट हुए। कल्प के अन्त में यही विलीन हो जायेंगे।

योगी ध्यान के द्वारा इस लोक में पहुंचने की चेष्टा करते हैं – यही परम पद है। आत्मिक और बुद्धि लोक में पूर्ण एकता है। यहां सारे भेद मिट जाते हैं। यह भेद मनस लोक तक ही रहता है। अन्तरात्मा सबमें एक है लेकिन विकास की अवस्थाएं भिन्न–भिन्न हैं। यहां आकर इस का ज्ञान होता है। *हमारी उत्पति एक ही स्थान से हुई है – विकास भी एक ही प्रकार से होता है – सब को एक ही स्थान पर जाना है। "आयु का अन्तर है"– अनुभूति यहां पहुंच कर होती है यह "अक्षर लोक है"।* सर्वज्ञता और पूर्ण ज्ञान का भण्डार हैं। यह *"अक्षर लोक" – "स्वर्ग और आत्म लोक"* के मध्य है। *"आत्मज्ञान"* से पूर्व जीवात्मा इसी लोक में पहुंचता है।

ॐ शान्ति, शान्ति, शान्ति

.....

आत्म लोक

सभी मनुष्यों की आत्मा में एक ही परमात्मा स्थित है। *"मैं"* भाव *"बुद्धि"* के विकास से आता है। *"निर्वाण लोक"* इसी *"आत्मलोक"* को कहते हैं। साधक को *"जीवात्मा"* का अनुभव होता है। यह लोक उसी के उत्तम शुद्ध स्वरूप का लोक है।

"वेदान्त" में इसे *"ब्रह्मलोक"* कहा है। *"शुद्ध"* आत्मा का लोक है इसमें जीवात्मा की सभी दैवी शक्तियां प्रकट हो जाती हैं। यह *"निज स्थान है"* किन का जीवन *"मुक्त"* महात्माओं का यहां महात्मा लोग अपने कारण शरीर में संदेह रखते हैं ताकि दूसरों का कल्याण कर सकें। यहां उनकी शुद्ध अंहता रहती है। यहां द्वैत भाव नहीं रहता। ईश्वर की शुद्ध किरण को बुद्धि रूपी (आवरण) *झिल्ली* घेर लेती है। तो ईश्वर से अलग महसूस होने लगता है। फिर *"मनोमय"* कोश की अरूप प्रकृति घेर लेती है। यह *"अण्डाकार कोश है"*। इसकी पहली चिंगारी आत्मा दूसरी बुद्धि, तीसरी मनस

है। यह आपस में मिल जाती हैं। जीवात्मा का स्वरूप बन जाता है।

"कुण्डलिनी शक्ति" का *"निज स्थान" "आत्म लोक है"*। यह *"हृदय"* रूपी गुफा में है। इसी में पहुंचकर अमृतत्व की प्राप्ति होती है। यही *"मोक्ष"* है। यहां पहुंच कर *"एकोऽम द्वितीयो नास्ति"* की अनुभूति होती है। (स्व) को खोना ही इसे पाने का मार्ग है।

यही वेदान्त का *"आनन्दमय"* कोश है।

निर्वाण लोक

इसके आगे *"सातवें लोक"* में क्या है किसी को मालूम नहीं यह *"ब्रह्म"* ही है। *"ब्रह्म"* लोक तक *"जीवात्मा की परमात्मा"* से पृथकता बनी रहती है। *"ब्रह्म"* में केवल संकल्प से ही प्रवेश होता है। जीवात्मा उसमें लय हो जाता है। फिर लौटने का कोई उपाय नहीं। जो उसमें प्रवेश कर गए वह दुबारा लौटकर नहीं आए। इसी की जानकारी किसी के पास नहीं। *"आत्म लोक तथा निर्वाण लोक"* का विकास अभी नहीं हुआ है। किन्तु कठिन साधना से इसे प्राप्त किया जा सकता है। इसमें कुछ ही *"साधक"* प्रवेश कर पाते हैं।

दुबारा जन्म होना और अवतार पुर्नजन्म का कारण – हिन्दु धर्म – बौद्ध धर्म – जैन धर्म सभी पुर्नजन्म में विश्वास रखते हैं परंतु *ईसाई और मुस्लिम* धर्म एक ही जन्म मानते हैं। ऐसी कई घटनाएं सामने आती हैं जिससे पुर्नजन्म को सिद्ध किया जा सकता है। कई व्यक्ति इसके ग्वाह भी होते हैं। *"थियोसाफी"* ने भी इसे स्वीकार किया है। *"पुर्नजन्म"* का मुख्य कारण (कर्म नियम है) मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगने के लिए पुर्नजन्म ग्रहण करता है। जीवन में किए गए स्थूल कर्मों का भोग स्थूल लोक में तथा स्थूल शरीर से ही होता है।

जब तक जीवात्मा के समस्त कर्मफल समाप्त नहीं हो जाते तब तक बार–बार जन्म ग्रहण करना पड़ता है। *"मुक्त पुरुष"* ही इस जन्म–मरण के चक्र से (मुक्त) होते हैं। अन्य सभी मनुष्यों को

बार–बार इस चक्र से गुजरना पड़ता है। पुर्नजन्म का दूसरा कारण शरीर के प्रति आसक्ति है। इसी शरीर के प्रति मोह के कारण ही वासनाएं पैदा होती हैं। इसकी पूर्ति के लिए इंसान पुर्नजन्म ग्रहण करता है। जब तक मनुष्य को जीवात्माओं के संसारी वासनाओं के प्रति वैराग्य नहीं हो जाता तब तक इस चक्र को रोका नहीं जा सकता।

तीसरा कारण – जीवात्मा का बार–बार जन्म ग्रहण करके ही उनसे प्राप्त अनुभवों के आधार पर लगातार विकास को प्राप्त होना हैं। कई जन्मों के बाद वह उच्च मानवता को प्राप्त होकर मुक्त हो जाती है। जीवात्मा की अंतिम गति है। कोई भी जीवात्मा एक ही जन्म में पूर्ण विकास नहीं कर सकती। इसी लिए कुदरत ने अनेक जन्मों की व्यवस्था की है।

मृत्यु के बाद जीवात्मा एक समय तक अन्तराल में रहती है। समय अवधि समाप्त होने पर *"पुर्नजन्म ग्रहण"* करती है। जीवात्मा स्वतंत्र नही है अपने जन्म को चुनने के लिए दिव्य सत्ताएं ही कर्म फलों के भोग के अनुसार चयन करती है। *"अन्तराल अवधि"* में पूर्व जन्म के कर्मों का पाचन होता है। पाचन के फलस्वरूप जो कर्म तीव्र होते हैं उनके अनुसार दैवी शक्तियां उसके कुल परिवार, क्षेत्र, वातावारण एवं समय का निर्धारण करके उसके अनुकूल पुर्नजन्म का निश्चय करती है।

आम तौर पर जीवात्मा का पूर्व जन्म जिस कुल वातावरण में होता है उसका पुर्नजन्म उसी वातावरण में होता है। लेकिन अगर जीवात्मा ने पूर्व जन्म में अधिक विकास कर लिया है वह अपने अनुकूल वातावरण में कहीं भी जन्म ले लेती है। आज हमारा संबंध जिस *"क्षेत्र"* या परिवार से है यह इसी जन्म का नहीं है। यह रिश्ते–नाते समाज की व्यवस्था मात्र हैं यह महत्वपूर्ण नहीं है।

इन से प्रेम, दया, विचारों की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता, ईर्ष्या, घृणा, बदला लेने की भावना, ऋण वसूल करना पूर्व जन्म के अनुसार

ही होता है। *"पूर्व जन्म का पिता" "पुत्र बन"* जाता है – *"पुत्र पिता बन जाता है" – "मां–पत्नी बन जाती है" – "बहन बन जाती है"* परंतु *"घृणा" "प्रेम"* के संबंध वैसे ही रहते हैं। *"अन्तराल"* में भटकती आत्माएं नए जन्म को ग्रहण करने को अत्सुक रहती है। उसकी वासना की तीव्रता के कारण है। *"वासना"* कम होने पर पुर्नजन्म भी विलम्ब से होता है। शरीर तैयार होने पर ही जीवात्मा उसमें प्रवेश करती है।

जीवात्मा के साथ *"मन" "बुद्धि, "चित्त", "अंहकार"* के होने से ही पुर्नजन्म होता है। यह जीवात्माएं समूह में पैदा होती है। कई *"उत्कृष्ट"* आत्माएं बिगड़ती स्थिति को देखकर एक साथ जन्म लेती है। इससे समाज में एक दम क्रांति आ जाती है। समाज का पूरा ढांचा बदल जाता है – जैसे "गांधी जी", "नेहरू जी", "सुभाष जी" एवं "तिलक" आदि एक साथ पैदा हुए। सारे देश का वातावरण बदल गया।

श्रीराम और श्री कृष्ण अपने पूरे समूह को लेकर पैदा हुए थे। इसी तरह दुष्ट आत्माएं भी इसी तरह पैदा होती है जैसे हिटलर, स्टालिन, माओ आदि एक साथ पैदा हुए और दुनियां में तबाही मचा दी। दो भाईयों में अक्सर *"कटुतापूर्ण"* संबंध ही होते हैं। इसका कारण यही है कि दोनों भिन्न–भिन्न वातावरण और भिन्न संस्कारों वाले हैं। इनका पूर्व जन्म में न कोई संबंध था न रहेगा। एक गर्भ से जन्म लेने के कारण भाई कहा जाता है। अगर पूर्व जन्म में भी प्रेम पूर्वक संबंध रहे हैं तो इस जन्म में भी रहेंगे नहीं तो नहीं।

पूर्व जन्म की याद

जो भी इस जन्म में जाना गया है जिस की पहचान बनी उसकी विस्मृति असम्भव है। शरीर और मन से जो कर्म किए जाते हैं – जिन "भावनाओं", "अकांक्षाओं" का पोषण किया जाता है उनकी छाप चित्त पर जम जाती हैं। जिसको मिटाने का कोई उपाय नहीं है। उस साधना को विशेष विधियों द्वारा ही मिटाया जा सकता है। तब मनुष्य

की जन्म–मरण से मुक्ति होती है।

अधिकांश व्यक्तियों को अपने पूर्व जन्म की याद नहीं रहती। इसके कई कारण हैं। सामान्यता जिस जीवात्मा के *"अन्तराल"* की अवधि कम होती है उसे अपने पूर्व जनम की स्मृति बनी रहती है लेकिन लम्बे *"अन्तराल"* के बाद याद भूल जाती हैं। जैसे दैनिक स्वप्न प्रातः थोड़े समय के लिए ही याद रहते हैं फिर व्यक्ति भूल जाता है। ठीक उसी तरह नए जन्म पर अपने पूर्व के अन्तराल समय एवं पहले जन्म का छः महीने तक सब कुछ याद रहता है।

बालक नींद में कभी हंसता है, कभी चमकता है , कभी उसके होंठ हिलते हैं वगैरा जो उसकी पूर्व जन्म की (स्मृतियों) के *"मस्तिष्क"* में आने से ही होता है। ज्यो–ज्यों इस जीवन का ज्ञान होने लगता है वैसे ही वह पुराने को भूल जाता है।

पूरी आयु भोगने के बाद मरने वालों को भी याद नहीं रहती। क्योंकि उनके प्राण बेहोशी में निकलते हैं – और वासनाएं भी तीव्र नहीं होती। *"दुर्घटना"* (accidental death) से मरने पर व्यक्ति के प्राण कठिनाई से निकलते हैं। मृत्यु के समय होश बना रहता है उनकी अतृप्त अशान्त वासना के कारण उनका का पुर्नजन्म शीघ्र हो जाता है। ऐसे मनुष्यों में *"पुर्नजन्म"* की स्मृति बनी रहती है। स्मृति सामान्यता साधारण तौर पर चार से सात वर्ष तक रहती हैं।

जो पूर्व जन्म का हाल बताते हैं वह तकरीबन ऐसे ही बच्चे होते हैं। जिन की मृत्यु किसी दुर्घटना एवं भयंकर बीमारी से हुई हो। आत्महत्या करने वालों, युद्ध में मरने वाले सैनिकों का दुबारा जन्म देरी से होता है। उनकी स्मृति बनी रहती है। पूर्व जन्म के कई उदाहरण सामने आते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

1) एक अमरीकी जनरल *"जार्ज पैटन"* को अपने पिछले छः जन्मों की याद थी। वे इन छः जन्मों में योद्धा था। पहले जन्म में "प्राग ऐतिहासिक" कलीन योद्धा थे। दूसरे में "ग्रीक" योद्धा थे जो "साइप्रिस" में राजा के खिलाफ लड़े। तीसरे में "सिकन्दर" महान के। चौथे में जुलियस सीजर के। पांचवें में अंग्रेज नाइट योद्धा थे जिसने हंड्रेड

ईर्यसवार "क्रैसी युद्ध" में भाग लिया था। छठवें नेपोलियन की सेना में मार्शल थे।

2) दूसरा उदाहरण मथुरा जिले के छत्ते कस्बे में *"प्रकाश"* का है। प्रकाश साढ़े चार वर्ष का था। वह कहने लगा वह प्रकाश नहीं *"निर्मल"* है। पास के गांव *"कोसीकलां"* का रहने वाला है। *"प्रकाश"* के जन्म के पूर्व 16 वर्ष *"निर्मल"* की मृत्यु हो गई थी। उस समय वह (दस वर्ष का था)। जब प्रकाश को वहां ले गए तो उसने पूर्व जन्म के सभी रिश्तेदारों (स्थान) व चीजों को पहचान लिया।

3) इसी तरह की एक घटना वर्तमान में *"उदयपुर"* जिले *"काकटोली"* कस्बे के एक पोस्टमास्टर के बेटे की है। उसे "सात वर्ष" की आयु में पूर्व जन्म की याद आ गई। वह कहने लगा मैं (टोंक) का रहने वाला हूं। बिजली का करंट लगने से मेरी मृत्यु हो गई थी। अभी वर्षा हो रही है मेरी पत्नी तकलीफ पा रही होगी। उसे जब वहां ले जाया गया तो उसने अपनी पत्नी तथा बच्चों को पहचान लिया। उसका पुर्नजन्म बीस वर्ष बाद हुआ था।

पहले जन्म की स्मृतियां हर एक इन्सान में संस्कार रूप में विद्यमान रहती हैं। जिन्हें थोड़ी सी साधना द्वारा पुनः स्मृति में लाया जा सकता है। *"सम्मोहन"* द्वारा भी पूर्व जन्म में प्रवेश करके *"पुर्नजन्म"* का हाल जाना जाता है। पूर्व जन्म के इन्हीं संस्कारों से वर्तमान जीवन में मनुष्य का व्यक्तित्व बनता है। संस्कार जब भी प्रकट होते हैं तो वह मनुष्य के व्यक्तित्व का ढांचा ही बदल देते हैं। अच्छे संस्कार, आत्मज्ञान, यतीन्द्रिय ज्ञान, प्रभु कृपा, सत्संग आदि से प्रकट होते हैं। अन्यथा सुप्त ही पड़े रहते हैं।

आज का वातावरण बुरे संस्कारों को उभारने का साधन बन गया है। आज का इन्सान इस समय के वातावरण से प्रभावित हो रहा है। पूर्व संस्कार का ज्ञान होता ही नहीं।

अवतार

"पुनर्जन्म" और "अवतार" में भेद

पुर्नजन्म कर्मों के फल भोग के लिए – जीवात्मा अपने विकास के लिए ग्रहण करती है। जीवात्माओं को बाध्य होकर जन्म धारण करना पड़ता है। जो आत्माएं पूर्ण विकसित होती हैं – न विकास की जरूरत होती है – और न कर्मफल शेष होते हैं – वह *"अवतार"* होते हैं। (ईश्वरीय) योजनानुसार ये संसार में उच्च ज्ञान देने के लिए आती हैं। विशेष प्रकार कार्यों को "सम्पन्न" करने आती हैं और कार्य समाप्ति पर पुनः लौट जाती हैं। यह सब ईश्वर द्वारा ही नियुक्त होते हैं। इन का पूर्ण विकास हो चुका होता है। इनमें ईश्वरीय चेतना होती है। संसार में आकर इन्हें साधना की जरूरत नहीं होती। उपदेश देने से कोई अवतार नहीं हो जाता। यह कार्य सन्तों का है। अवतार पूरे जनजीवन को अन्दोलित कर देते हैं।

जिस समय कोई अवतार होता है वह अकेला नहीं होता अपने पूरे समूह को लेकर आता है। (समूह) (Group of Saints) पूर्व जन्मों का होता है। जीवात्माएं अपने कर्मों के अनुसार समूह में ही रहती है। अगले जन्म में फिर अपने सारे समूह के साथ जन्म लेती है। इन साधारण जीव आत्माओं का उस अवतार के साथ एक तादात्म्य होता है। एका होता है। जैस' *"कृष्ण"* के संघ, *"गोप"*, *"ग्वाल"* गोपियां आदि।

पूर्व जन्म के विरोधी भी इस जन्म में विरोधी बन कर सामने आते हैं। उदाहरण के तौर पर *"बुद्ध"* का चचैरा भाई *"देवव्रत"* कृष्ण के साथ वहेलिया जो पूर्व जन्म में बाली था।

अवतार लेने में देवता भी उत्सुक रहते हैं और साहयक होते हैं। वे उसके मंगल की सदा कामना करते रहते हैं। *"राम जन्म"* पर कई ऋषि मुनि आशीर्वाद देने आए थे। *"बुद्ध"* के साथ भी ऐसा ही हुआ। हिन्दुओं की अवतार की धारणा स्पष्ट होती है। अन्य धर्मों ने अपनी व्याख्याएं दी हैं।

ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

चैतन्य योग संस्थान द्वारा प्रकाशित

- शिव शक्ति भजन
- गुरू चालिसा
- शिव शक्ति अराधना
- चैतन्य योग दर्शन
- साधना में समाधि की सीढ़ियां
- मृत्यु और मृत्यु के बाद

मिलने का पता :–

चैतन्य योग संस्थान 319, शास्त्री नगर, जम्मू

जीवन और मृत्यु

● जीवन और मृत्यु आत्मा–परमात्मा को पाने के दो पहलू है। रात के बाद दिन, दिन के बाद रात होती है इसी तरह जीवन और मृत्यु के चोले बदलते रहते है।

● दिन जितना प्यारा है, रात भी उतनी ही आवश्यक है। जीवन जितना प्यारा है, मृत्यु भी उतनी ही आवश्यक है।

● बचपन बदल गया यौवन बदल गया बुढापा बदल गया शरीर बदल गया फिर तुम भी हो। तुम वह 'अमर आत्मा' हो जिस पर काल का भी कोई प्रभाव नही चलता।

● तुम्हारी अवस्थाएं बदलती हैं, तुम नहीं बदलते पहले तुम सूक्ष्म रूप में थे। फिर बालक का रूप धारण किया। बाल्या व्स्था छूट गई तो किशोर बन गये। किशोर–वस्था छूट गई तो जवान बन गयें। जवानी गई तो वृद्धावस्था आ गई तुम नहीं बदले, परन्तु तुम्हारी अवस्थाएं बदलती गई।

मृत्यु क्या है ?

सभी मनुष्यों की आत्मा में एक ही परमात्मा स्थित है मृत्यु क्या है-मृत्यु के बाद भी जीवन है। मृत्यु के बाद आत्माए किन-किन लोकों में भ्रमण करती है। क्या पुर्नजन्म भी होता है। मुत्यु किस की होती है, मोक्ष परलोक यात्रा इत्यादि इस पुस्तक में दर्शने का यत्न किया है। मृत्यु जीवन का 'शाश्वत सत्य है। इस सत्यता से हम इन्कार नहीं कर सकते। परन्तु मनुष्य अज्ञानवश या मद से चूर स्वंय अपना 'पतन' (विनाश) अन्त कर लेता है। जिस के लिए 'इर्श्वर' नहीं हम खुद जिम्मेदार है।

मृत्यु के बाद और पुर्नजन्म से पहले जीवात्मा को एक लम्बे समय तक 'शून्य' अशरीरी रूप में भटकना ही पडता है। मनुष्य जैसा अनुभव इस संसार से लेकर जाता है उसका वैसा ही अनुभव अन्तराल में होता है।

संसार मृत्यु से परिपूर्ण है। कर्म का नियम अटल है, सावधान हो जाओ। कहीं अशुभ कर्मों के मध्य फंस कर तुम्हारी मृत्यु न हो जाए। अपनी भयंकर भूलों को देखो। अहंकार को उखाड़ डालो। तुम्हारी साधना के लिए मैं व्याकुल रहता हूँ। मै सदा तुम्हारे साथ रहता हूँ।

डॉ. विक्रम गुप्ता
(योगाचार्य)

Inar Offset Printers, Ph. : 0191-2541548